

शब्द-रूपावली

(विना रटे शब्द-रूपों का ज्ञान करानेवाली)



संकलयिता—

पं० युधिष्ठिर मीमांसक

श्री रामलाल कपूर ट्रस्ट ग्रन्थमाला सं० ३२

॥ ओ३म् ॥

शब्द-रूपावली

(विना रटे शब्द-रूपों का ज्ञान करानेवाली)



संकलयिता—

पं० युधिष्ठिर मीमांसक

प्रकाशक—
रामलाल कपूर ट्रस्ट,
बहालगढ़, जिला सोनीपत
(हरयाणा) १३१०२१

चतुर्थ बार—२०००
कार्त्तिक २०५३ वि०
अक्तूबर सन् १९९६
मूल्य— ८-००

मुद्रक—
नरेन्द्र कुमार कपूर
रामलाल कपूर ट्रस्ट प्रेस,
बहालगढ़ (सोनीपत-हरयाणा)

२+८६ पृष्ठ कमाल आफसेट प्रेस, द्वारा नई सड़क दिल्ली में छापे गये।

विषय-सूची

विषय पृष्ठ

भूमिका

संस्कृतभाषा के ज्ञान के लिये नाम (=संज्ञा) शब्दों और धातुओं के रूपों का ज्ञान होना परम आवश्यक है। प्राचीन काल में जब संस्कृतभाषा जन-साधारण की भाषा थी, उस समय भाषा का ज्ञान लोकव्यवहार से ही हो जाता था। संस्कृतभाषा के ज्ञान के लिये पृथक् प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं होती थी। उसके पीछे जब संस्कृतभाषा लोकव्यवहार की भाषा न रही, उस समय संस्कृतभाषा के ज्ञान के लिये व्याकरण का आश्रय लिया जाने लगा। संस्कृतभाषा के सामान्य ज्ञान के लिये आरम्भ में छोटे-छोटे बच्चों को शब्द-रूपावली और धातुरूपावली स्मरण करा दी जाती थी। यह परिपाटी आज से ३०—३५ वर्ष पूर्व तक प्रायः इसी प्रकार रही।

छोटी अवस्था में शब्दों और धातुओं के रूप स्मरण करने में कोई कठिनाई नहीं होती, परन्तु बड़ी अवस्था के छात्रों वा संस्कृत जानने की इच्छा रखने-वाले सामान्य जनों को आरम्भ में ही शब्दों और धातुओं के रूपों को कण्ठाग्र कराना न केवल कठिन ही है, अपितु अनुचित भी है। बड़ी अवस्था के व्यक्ति आरम्भ में ही रामः रामौ रामाः, भवति भवतः भवन्ति आदि रूप स्मरण कराने के आग्रह से संस्कृतभाषा को रटन्त भाषा मानकर उससे दूर हट जाते हैं। ऐसे कारणों से लोक में संस्कृतभाषा रटन्त भाषा के नाम से स्मरण की जाती है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि कतिपय शब्दों और धातुओं के रूपों का ज्ञान हुए विना संस्कृतभाषा में प्रवेश नहीं हो सकता। इस कारण कतिपय शब्दों और धातुओं के रूपों का ज्ञान आरम्भ में किसी न किसी रूप में कराना ही पड़ता है, और पड़ेगा।

आजकल जितनी भी विविध प्रकार की शब्दरूपावली और धातुरूपावली छपी हुई उपलब्ध होती हैं, उनसे छोटी अवस्था के बालकों को तो शब्दरूप और धातुरूप कण्ठाग्र कराये जा सकते हैं, परन्तु बड़ी अवस्थावालों के लिये ये रूपावलियां नितान्त अनुपयोगी हैं। क्योंकि इनके द्वारा रूपों को रटकर ही बुद्धिस्थ किया जा सकता है। बड़ी अवस्थावालों के लिये ऐसी शब्दरूपावली

और धातुरूपावली की आवश्यकता है, जिनके द्वारा समझपूर्वक विना रटे शब्दों और धातुओं के रूपों का परिज्ञान वा स्मरण हो जाये।

इसी उद्देश्य को लक्ष्य में रखकर हम इस शब्दरूपावली का प्रकाशन कर रहे हैं। इस संग्रह में हमने प्राचीन शब्दरूपावलियों के 'अकारान्त पुंलिङ्ग राम शब्द' आदि क्रम का परित्याग करके नये क्रम से शब्दों के रूपों का संग्रह किया है। इस क्रम से संस्कृतभाषा में प्रवेश करनेवाले, चाहे वे छोटी आयु के हों चाहे बड़ी आयु के, उन्हें थोड़ासा कार्य समझ लेने मात्र से विना रटे शब्दों के रूप हृदयंगम हो जायेंगे।

हमने इस शब्द-रूपावली में यह क्रम रखा है कि सब से प्रथम ऐसे शब्द के रूप बताये हैं, जिस के आगे विभक्तियों के शुद्ध रूप जोड़ देनेमात्र से ही रूप बन जाते हैं। उसके पश्चात् भी शब्दों के क्रम में यह ध्यान रखा है कि नये शब्द के रूपों में जहां पिछले शब्द के रूपों से कुछ भेद हो, उस को बताने के लिये दो तीन नियम बताये हैं, शेष रूप पूर्ववत् ही बनते जायेंगे। शब्द के रूपनिर्देश के पश्चात् उस शब्द के समान रूपवाले कुछ शब्दों का संग्रह भी दे दिया है। इस प्रकार एक-एक शब्द के रूपज्ञान के साथ-साथ बहुत से शब्दों के रूपों का ज्ञान अनायास ही होता जायेगा।

हमें पूर्ण विश्वास है कि हमारे इस नये प्रयास से शब्दों के रूपज्ञान करने-कराने के लिये छात्रों को शब्दरूप रटने नहीं पड़ेंगे। उन्हें संस्कृतभाषा सरल प्रतीत होगी, और उसमें उनकी रुचि बढ़ेगी।

प्रत्येक शब्द के आरम्भ में उस शब्द के विशेष रूपों का ज्ञान कराने के लिये हिन्दी में कुछ नियम दिये हैं। उनको समझपूर्वक हृदयस्थ कर लेने शब्दों के रूप बनाने में बड़ी सरलता होगी।

शब्द-रूपावली के ढंग पर ही हम धातुरूपावली की रचना भी करना चाहते हैं। उसे भी यथासम्भव शीघ्र प्रकाशित किया जायेगा॥

'विदुषां वशंवद—युधिष्ठिर मीमांसक

ओ३म्

शब्द-रूपावली

प्रथम पाठ

शब्दों का यथार्थ उच्चारण

संस्कृतभाषा सीखने के लिये वर्णों (=स्वरों और व्यञ्जनों) के शुद्ध यथार्थ उच्चारण पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है। किस स्वर वा व्यञ्जन का उच्चारण कैसे करना चाहिए, उस के उच्चारण का स्थान क्या है और प्रयत्न क्या है, इन सब का परिज्ञान कराने के लिए ऋषि-मुनियों ने 'शिक्षा' नाम के शास्त्र की रचना की, और उसे छः वेदाङ्गों में प्रथम स्थान दिया। इस शिक्षा-शास्त्र में वर्णों का शुद्ध उच्चारण कैसे करना चाहिए, इसका अत्यन्त सूक्ष्म ज्ञान कराया है। इसे ही 'वर्णोच्चारण-शिक्षा' कहते हैं। पाणिनिमुनिकृत 'वर्णोच्चारण-शिक्षा' के सूत्र चिरकाल से पठनपाठन के अभाव के कारण लुप्त हो गए थे। उस सूत्रात्मक शिक्षा के स्थान पर अन्य व्यक्तिकृत श्लोकात्मक पाणिनीय-शिक्षा प्रचलित हो गई थी। श्री महर्षि दयानन्दजी सरस्वती ने महान् प्रयत्न करके लुप्तप्राय सूत्रात्मक शिक्षा का उद्धार किया[1]।

---

१. श्री स्वामी दयानन्द जी सरस्वती को पाणिनीय शिक्षासूत्रों का जो हस्तलेख उपलब्ध हुआ था, वह त्रुटित था। हमनें बड़े प्रयत्न से उस का दूसरा ग्रन्थ प्राप्त करके पूरा पाठ प्रकाशित किया है। देखिये—'शिक्षा-सूत्राणि' संग्रह। इसमें आपिशल पाणिनि और चन्द्रगोमी प्रोक्त शिक्षासूत्रों का संग्रह है।

और उसे भाषार्थसहित 'वर्णोच्चारण-शिक्षा' के नाम से प्रकाशित किया है। शब्दों के यथार्थ उच्चारण के लिये छात्रों को सब से प्रथम वह वर्णोच्चारण-शिक्षा पढ़नी चाहिए। उसके अध्ययन से शब्दों के ठीक-ठीक उच्चारण का ज्ञान हो जाएगा।

यद्यपि शब्दों का अयथार्थ उच्चारण सभी भाषाओं में दोष माना गया है, तथापि संस्कृतभाषा में तो वर्णों के किञ्चिन्मात्र उच्चारण दोष से महान् अनर्थ हो जाता है। किसी कवि ने कहा है—

यद्यपि बहु नाधीषे तथापि पठ पुत्र व्याकरणम्।
स्वजनः श्वजनो माभूत् सकलं शकलं सकृत् शकृत् ॥

शकल=टुकड़ा	सकल=सम्पूर्ण
शकृत्=मल (विष्ठा)	सकृत्=एक बार
श्वजन=कुत्ते का परिवार	स्वजन=अपना परिवार
शास्त्री=शास्त्र जाननेवाला	सास्त्री=वह स्त्री
अश्व=घोड़ा	अस्व=जो अपना नहीं

पाठक गम्भीरता से विचार करें कि 'श' के स्थान में 'स' अथवा 'स' के स्थान में 'श' मात्र के उच्चारण दोष से कितना अनर्थ हो जाता है। यह तो एक वर्ण के उच्चारण-दोष का उदाहरण है। इसी प्रकार अन्य वर्णों के अशुद्ध उच्चारण से भी महान् अनर्थ होता है, यह भी समझ लेना चाहिए। इसी लिये शास्त्रकारों ने कहा है—

दुष्टः शब्दः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्[1] ॥

अर्थात्—स्वर (=उदात्त अनुदात्त स्वरित) वा वर्ण से दुष्ट अथवा अशुद्ध प्रयुक्त शब्द उस अर्थ को प्रकट नहीं करता, जिस को प्रकट करने के लिए प्रयोक्ता उस शब्द का उच्चारण करना चाहता है। इस कारण

१. महाभाष्य अ० १, पाद १, आह्निक १।

वह दुष्ट शब्द वाग्रूपी वज्र बन कर यजमान (प्रयोक्ता) के अभिप्राय[1] का नाश कर देता है। जैसे इन्द्रशत्रु शब्द स्वरदोष के अपराध से उल्टे अर्थ को प्रकट करनेवाला हो जाता है ॥

इस श्लोक में कहे गए इन्द्रशत्रु दृष्टान्त को इस प्रकार समझें—प्रयोक्ता अन्तोदात्त इन्द्रशत्रुः शब्द का उच्चारण करना चाहता है। इस का अर्थ है—'इन्द्र का शत्रु=नाश करनेवाला'। भूल से प्रयोक्ता अन्तोदात्त के स्थान पर आद्युदात्त इन्द्रशत्रुः शब्द का प्रयोग कर देता है, तो उस का अर्थ हो जाता है—'इन्द्र शत्रु=नाश करनेवाला है जिस का'। दोनों अर्थ परस्पर विरुद्ध हैं। ये दोनों विरोधी अर्थ केवल स्वरभेद से निष्पन्न होते हैं। यह स्वरदोष का उदाहरण है, वर्णदोष के उदाहरण हम ऊपर दिखा चुके हैं।

इसलिये संस्कृतभाषा सीखनेवाले व्यक्ति का शुद्ध उच्चारण ही पर विशेषरूप से ध्यान देना चाहिए।

देवनागरी लिपि वैज्ञानिक लिपि है। इस में जो लिखा जाता है वही पढ़ा जाता है, जो बोला जाता है वही लिखा जाता है। दोनों में रत्तीभर भी अन्तर नहीं होता। इसी लिपि में संस्कृत हिन्दी और मराठी भाषाएं लिखी जाती हैं। बंगला और गुजराती लिपि भी देवनागरी का ही रूपान्तर हैं। इन लिपियों में जितने भी वर्ण हैं, उनके दो भेद हैं—एक स्वर और दूसरे व्यञ्जन। स्वरों का उच्चारण बिना किसी अन्य वर्ण की सहायता के हो जाता है, परन्तु व्यञ्जनों का उच्चारण स्वर की सहायता के बिना नहीं होता। व्यञ्जनों का जो स्वरूप क ख ग घ ङ ····· श ष स ह आदि लिखा जाता है, वह शुद्ध व्यञ्जनों का नहीं है। प्रत्येक क ख ग घ आदि व्यञ्जन के अन्त

---

1. देखो—ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पठन-पाठन-विषय, पृष्ठ ३५७ (रा० ला० कपूर ट्रस्ट संस्करण)

में अ वर्ण की ध्वनि भी स्पष्ट निकलती है। वस्तुतः क ख ग घ आदि व्यञ्जनों का शुद्ध स्वरूप वा शुद्ध उच्चारण वह है, जिसके अन्त में आ का मिश्रण न हो और अ की ध्वनि न निकले। इसलिए व्यञ्जनों का वास्तविक स्वरूप वह है, जिसे हम किसी शब्द के अन्त में हल् रूप में लिखते हैं वा उच्चारण करते हैं। यथा—

वाक् में क् का	सरित् में त् का
भगवान् में न् का	दिश् में श् का
उषस् में स् का	अनडुह् में ह् का

अतः व्यञ्जनों के शुद्ध उच्चारण के लिए सब से प्रथम इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि कौनसा व्यञ्जन स्वर (अ)[1] सहित है, और कौनसा स्वररहित अपने शुद्ध रूप में है। इस बात पर ध्यान देकर उच्चारण करने से शब्दों का शुद्ध उच्चारण होता है, कभी अशुद्ध उच्चारण नहीं होता।

विशेष उच्चारण-दोष—आजकल हिन्दीभाषा-भाषी प्रायः उत्तर भारतीय अन्त्य स्वर विशिष्ट व्यञ्जन का उच्चारण अरहित हल् अर्थात् शुद्ध व्यञ्जन के रूप में करते हैं। यथा—

बालक का बालक्	सुन्दर का सुन्दर्
राम का राम्	देव का देव्
सारस का सारस्	शतपथ का शतपथ्

इन उदाहरणों के अन्त्य क र म व स थ के उच्चारण में अ-ध्वनि का उच्चारण नहीं किया जाता। शुद्ध अ-रहित हल् व्यञ्जन

१. जब व्यञ्जन के साथ 'अ' से अन्य स्वर लगा होता है, तब उसका अशुद्ध उच्चारण प्रायः नहीं होता। अकारसहित व्यञ्जन के उच्चारण में प्रायः अशुद्धि होती है। इसी प्रकार शुद्ध व्यञ्जन (=हल्) के उच्चारण में भी कभी-कभी स्वर का आगे-पीछे योग करके अशुद्ध उच्चारण किया जाता है।

का ही उच्चारण करते हैं। इसी उच्चारण-दोष के कारण आजकल के पण्डितमानी संस्कृत शब्द के अन्त्य हल् वर्ण के नीचे हल् का चिह्न भी नहीं लगाते। 'हनुमान् को हनुमान', 'भगवान् को भगवान', इस प्रकार लिखते हैं।

इसी प्रकार मध्यवर्ती अ से युक्त व्यञ्जन को प्रायः शुद्ध (हल्) रूप में उच्चारण करते और लिखते हैं। यथा—

जनता के स्थान में जन्ता
भगवान् के स्थान में भग्वान्
अपना के स्थान में अप्ना
देवता के स्थान में देव्ता

संस्कृत का अध्ययन-अध्यापन करतेवालों को इस प्रकार के लेखन और उच्चारण दोषों पर विशेष ध्यान देना चाहिए। संस्कृत सीखनेवालों को हे राम! के स्थान में हे राम्; हे बालक! के स्थान में हे बालक् ऐसा अशुद्ध उच्चारण कभी नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार लिखने में भी हलन्त को हलन्त और स्वरविशिष्ट को स्वरविशिष्ट ही लिखना चाहिये। यथा—

कलम कलम् कल्म क्लम क्लम्

इन शब्दों के उच्चारणों में जो भेद है, उन पर ध्यान देने से यह प्रकरण अधिक स्पष्ट हो जायेगा। अतः हम उक्त शब्दों के उच्चारण-भेद की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट करते हैं—

कलम—इस शब्द में तीनों क ल म व्यञ्जनों में अ मिला हुआ है। अतः इन तीनों का उच्चारण ऐसे ढंग से करना चाहिए कि तीनों व्यञ्जनों के अन्त में अ की ध्वनि स्पष्ट सुनाई देवे।

कलम्—इस में अन्त्य म् हल् है। उस में अ मिला हुआ नहीं है। अतः इस शब्द के उच्चारण में क ल के अन्त में तो अ का उच्चारण

करना चाहिये, और म् को शुद्ध हल् रूप में बोलना चाहिए। यही **कलम** और **कलम्** के उच्चारण में भेद है।

कल्म—इस में क म दोनों व्यञ्जनों में तो अ मिला हुआ है, परन्तु मध्यवर्ती ल् हल् है। इसलिये इस शब्द के उच्चारण में ल् को हल् रूप में बोलना चाहिए, अ-सहित का उच्चारण नहीं करना चाहिए। यही **कल्म** और **कलम** के उच्चारण का भेद है।

क्लम— इस शब्द में क् हल् है, और ल म दोनों अ से युक्त हैं। इसलिये इस में 'क्' व्यञ्जनमात्र का उच्चारण करना चाहिए, और ल म का अ-विशिष्ट। यही **क्लम** और **कलम** के उच्चारण में भेद है।

क्लम्—इस के आदि में क् और अन्त में म् दोनों ही हल् (शुद्ध) व्यञ्जन हैं, केवल ल-अ से संयुक्त है। इसलिये इस के उच्चारण में क् म् दोनों का हल् (शुद्ध) व्यञ्जन के रूप में ही उच्चारण करना चाहिए। यही **क्लम्** और **कलम** के उच्चारण में भेद है।

इस प्रकार उच्चारण और लेखन दोषों पर विशेष ध्यान देने से संस्कृतभाषा के शुद्ध रूप में बोलने और लिखने में बड़ी सहायता मिलती है॥

द्वितीय पाठ

विभक्ति वचनों का परिचय

संस्कृतभाषा में जितने भी नाम (=संज्ञा) शब्द हैं, उनके अन्त में विभक्तियों के प्रत्यय[1] जुड़ते हैं। प्रत्येक विभक्ति में एकवचन द्विवचन बहुवचन रूप तीन-तीन वचन होते हैं। इस प्रकार एक नाम शब्द के सात विभक्तियों और उन के तीन वचनों में (७×३=) २१ रूप बनते हैं। संबोधन को भी कुछ लोग स्वतन्त्र विभक्ति मानते हैं, परन्तु उस में प्रथमा विभक्ति के प्रत्ययों का ही योग होने से वह स्वतन्त्र विभक्ति नहीं मानी जाती।

सात विभक्तियों और तीनों वचनों के प्रत्यय प्रत्येक नाम शब्द के साथ अन्त में जुड़कर विभिन्न प्रकार के रूप बनाते हैं। इसलिए नाम शब्दों के रूपों के परिज्ञान के लिए इन सात विभक्तियों के तीनों वचनों अर्थात् (७×३=) २१ प्रत्ययों के रूपों को जान लेना अत्यन्त आवश्यक है।

संस्कृतभाषा का जो सब से प्राचीन और प्रामाणिक व्याकरण मिलता है, वह पाणिनिमुनि कृत है। यह व्याकरण 'अष्टाध्यायी' के नाम से लोक में प्रसिद्ध है। पाणिनिमुनि ने अपनी अष्टाध्यायी में उक्त सात विभक्तियों और तीन वचनों के प्रत्यय इस प्रकार दर्शाये हैं[2]—

---

१. 'प्रत्यय' उस शब्दांश को कहते हैं, जो मूल शब्द के अन्त में जुड़ता है।

२. स्वौजसमौट्छष्टाभ्याम्भिस्ङेभ्याम्भ्यस्ङसिभ्याम्भ्यस्ङसोसाम्ङ्योस्सुप्। अष्टा० ४।१।२॥

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सु	औ	जस्
द्वितीया	अम्	औट्	शस्
तृतीया	टा	भ्याम्	भिस्
चतुर्थी	ङे	भ्याम्	भ्यस्
पञ्चमी	ङसि	भ्याम्	भ्यस्
षष्ठी	ङस्	ओस्	आम्
सप्तमी	ङि	ओस्	सुप्

सम्बोधन में प्रथमा विभक्ति (सु औ जस्) ही प्रयुक्त होती है।

इन विभक्ति-वचनों के २१ प्रत्ययों का जो रूप पाणिनि ने दर्शाया है, उस में कुछ वर्ण विशेषकार्य करने के लिये विशेषणार्थ[1] जोड़े हैं। उन को वह कार्य करते समय हटा दिया जाता है। उन विशेषणार्थ जोड़े गए वर्णों को हटा देने पर जो रूप बचता है, वही प्रत्ययों का वास्तविक स्वरूप है। यथा—

'सु' में से 'उ' हटाया जाता है, शेष 'स्' बचता है। जस् शस् में से क्रमशः 'ज्' 'श्' हटाने पर दोनों का 'अस्' रूप शेष रहता है। 'औट्' में से 'ट्' हटाने पर 'औ' रूप बचता है। इसी प्रकार 'टा' में से 'ट्' हटाने पर 'आ' शेष रहता है। 'ङे' 'ङस्' 'ङि' में से 'ङ्' हटाने पर क्रमशः 'ए' 'अस्' 'इ' यह शुद्ध रूप बचते हैं। इसी प्रकार 'ङसि' में से 'ङ् इ' दो वर्ण हटाने पर इस का भी 'अस्' रूप ही शेष रहता है। इस प्रकार सातों विभक्तियों के तीनों वचनों

---

१. पाणिनीय शास्त्र में विशेषणार्थ प्रयुक्त जिस वर्ण को हटाया जाता है, उसकी इत् संज्ञा करते हैं और उसका लोप होता है। कार्यार्थ प्रयुक्त वर्ण इत्संज्ञक कहाते हैं।

में प्रत्ययों के जो शुद्ध रूप नाम-शब्दों के साथ जुड़ते हैं, वे इस प्रकार हैं—

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	स्	औ	अस्
द्वितीया	अम्	औ	अस्
तृतीया	आ	भ्याम्	भिस्
चतुर्थी	ए	भ्याम्	भ्यस्
पञ्चमी	अस्	भ्याम्	भ्यस्
षष्ठी	अस्	ओस्	आम्
सप्तमी	इ	ओस्	सु

शब्दों के रूप बनाने के लिये नाम शब्दों के आगे इन्हीं शुद्ध रूपों को जोड़ा जाता है। इसलिये इन २१ प्रत्ययों को स्मरण कर लेने से विभिन्न प्रकार के नाम-शब्दों के सहस्रों रूप अनायास ही बन जाते हैं। शब्द-रूपों को रटने से मुक्ति मिल जाती है। अतः छात्रों को चाहिये कि वे सात विभक्तियों के तीनों वचनों के शुद्ध रूपों को अच्छे प्रकार हृदयङ्गम कर लें।

हां, यह भी ध्यान में रखें कि पाणिनि ने २१ प्रत्ययों के जो रूप बताये हैं, उन्हें भी स्मरण रखना आवश्यक है। आगे शब्द-रूपों के जो नियम बताये जायगे, वहां बहुत स्थानों पर स्पष्टता[1] के लिये पाणिनीय विशिष्ट रूपों का आश्रयण करना पड़ेगा। अभिप्राय यह

१. यथा—जस् शस् दोनों का शुद्ध रूप 'अस्' बचता है। इसी प्रकार ङसि ङस् का शुद्ध रूप भी 'अस्' ही शेष रहता है। अतः अस् मात्र का निर्देश करने से यह स्पष्ट नहीं होता कि यहां किस अस् का ग्रहण करना इष्ट है। यदि 'अस्' के स्थान पर पाणिनीय रूप लिख दें, तो विभक्तिवचन का संदेह नहीं रहता।

है कि इन सातों विभक्तियों के तीनों वचनों के दोनों प्रकार के (=पाणिनि द्वारा निर्दिष्ट और शुद्ध) रूपों को ध्यान में रखना चाहिये।

अब हम सातों विभक्तियों के पाणिनि द्वारा पठित रूप और उन के शुद्ध रूप दोनों को साथ-साथ उपस्थित करते हैं। जिस से किस पाणिनीय रूप का कौनसा शुद्ध रूप है, यह ज्ञात हो जाये। इन २१ प्रत्ययों में कुछ प्रत्यय ऐसे हैं, जिनका पाणिनीय रूप ही शुद्ध स्वरूप है। अतः जिन प्रत्ययों के रूपों में भेद है, उनमें पाणिनीय रूप के साथ शुद्ध रूप को कोष्ठक में देंगे—

प्रथमा	सु (स्)	औ	जस् (अस्)
द्वितीया	अम्	औट् (औ)	शस् (अस्)
तृतीया	टा (आ)	भ्याम्	भिस्
चतुर्थी	ङे (ए)	भ्याम्	भ्यस्
पञ्चमी	ङसि (अस्)	भ्याम्	भ्यस्
षष्ठी	ङस् (अस्)	ओस्	आम्
सप्तमी	ङि (इ)	ओस्	सुप् (सु)

तृतीय पाठ

आवश्यक संज्ञाएं और सन्धियां

शब्दों के रूपों का ज्ञान कराने के लिये आगे जो नियम दिये जायेंगे, उन के स्पष्टीकरण के लिए निम्न कुछ संज्ञाओं और सन्धियों का ज्ञान होना आवश्यक है। इन कार्यों का ज्ञान हो जाने से आगे हमें इन कार्यों को बार बार दोहराना न पड़ेगा।

लोप संज्ञा[1]—किसी भी वर्ण को छिपा देना=न बोलना 'लोप' कहलाता है।

अच् संज्ञा[2]— अ से लेकर औ पर्यन्त स्वरों की 'अच्' संज्ञा होती है।

हल् संज्ञा[3]— क से लेकर ह् पर्यन्त व्यञ्जनों की 'हल्' संज्ञा होती है।

सुप् संज्ञा[4]— सातों विभक्तियों के, प्रथमा विभक्ति के एकवचन 'सु' से लेकर सातवीं विभक्ति के बहुवचन 'सुप्' के पकार पर्यन्त २१ प्रत्ययों की 'सुप्' संज्ञा होती है।

---

१. अदर्शनं लोपः। अष्टा० १।१।५९।

२. प्रत्याहाररूप संज्ञा। (प्रत्याहारसूत्र ४)।

३. प्रत्याहाररूप संज्ञा। (प्रत्याहारसूत्र १४)।

४. प्रत्याहाररूप संज्ञा।४।१।१।।

पद संज्ञा[1]—(क) सुप् प्रत्यय जिस के अन्त में हो, उस (नाम और प्रत्यय दोनों के) समुदाय की 'पद' संज्ञा होती है। इसी प्रकार आख्यात प्रत्यय (=तिप् आदि) जिस के अन्त में हों, उस समुदाय को भी 'पद' संज्ञा होती है।

(ख) 'भ्याम् भिस् भ्यस् सुप्' इन हलादि विभक्तियों के परे रहने पर पूर्व नाम (मात्र) की भी 'पद' संज्ञा होती है।

भ संज्ञा[2]— द्वितीया के बहुवचन शस् (=अस्) से लेकर अन्त तक जितने भी शुद्ध रूप में अजादि (=स्वरादि शस्—अस्, टा—आ, ङे—ए, ङसि—अस्, ङस्—अस्, ओस्, आम्, ङि—इ, ओस्) प्रत्यय हैं, उन के परे रहने पर पूर्व नाम शब्द की 'भ' संज्ञा होती है।

सर्वनामस्थान संज्ञा[3]—(क) नपुंसकलिङ्ग को छोड़कर पुंलिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग से जो सुप् विभक्तियां आती हैं, उन में सु (प्रथमैकवचन) से लेकर औट् (द्वितीया द्विवचन) पर्यन्त पांच प्रत्ययों की 'सर्वनामस्थान' संज्ञा होती है।

(ख) नपुंसक लिङ्ग में जस् (प्रथमा बहुवचन), शस् (द्वितीया बहुवचन) के स्थान पर जो 'इ' आदेश होता है, उस की भी 'सर्वनामस्थान' संज्ञा होती है।

वृद्धि संज्ञा[4]—आ ऐ औ वर्णों की 'वृद्धि' संज्ञा होती है। ऋ के स्थान पर 'आर्' वृद्धि होती है।

---

१. सुप्तिङन्तं पदम्; स्वादिष्वसर्वनामस्थाने। अष्टा० १।४।१३; १७॥

२. यचि भम्। अष्टा० १।४।१८॥

३. सुडनपुंसकस्य, शि सर्वनामस्थानम्। अष्टा० १।१।४२, ४१॥

४. वृद्धिरादैच्। अष्टा० १।१।१॥ उरण् रपरः। अष्टा० १।१।५०॥

गुण संज्ञा[1]—अ ए ओ वर्णों की 'गुण' संज्ञा होती है। ऋ के स्थान पर 'अर्' गुण होता है।

उपधा संज्ञा[2]—अन्त्य वर्ण से पूर्व वर्ण की 'उपधा' संज्ञा होती है।

सवर्ण संज्ञा[3]—जिन वर्णों का परस्पर स्थान और आभ्यन्तर प्रयत्न समान (=एक जैसे) होते हैं, उनकी 'सवर्ण' संज्ञा होती है। यथा—अ आ, इ ई, उ ऊ; क ख ग घ ङ आदि वर्गस्थ वर्ण।

संबुद्धि संज्ञा[4]—संबोधन के एकवचन की संबुद्धि संज्ञा होती है।

नदी संज्ञा[5]—(क) दीर्घ ईकारान्त, ऊकारान्त जो नियत स्त्रीलिङ्ग शब्द हैं, उनकी 'नदी' संज्ञा होती है। यथा—कुमारी गौरी, वधू चमू।

(ख) ह्रस्व इकारान्त उकारान्त जो नियत स्त्रीलिङ्ग शब्द हैं, उन की ङित् (ङे ङसि ङस् ङि) विभक्तियों में विकल्प से 'नदी' संज्ञा होती है। यथा—रुचि, धेनु।

घि संज्ञा[6] (क) ह्रस्व इकारान्त, उकारान्त, नियत स्त्रीलिङ्ग शब्दों की ङित् (ङे ङसि ङस् ङि) विभक्तियों में विकल्प से 'घि' संज्ञा होती है। अर्थात् पूर्व नियम से नदी और इस नियम से घि दोनों संज्ञाएं विकल्प से होती हैं। यथा—रुचि, धेनु।

---

१. अदेङ् गुणः। अष्टा० १।१।२॥ उरण् रपरः। अष्टा० १।१।५०॥
२. अलोऽन्त्यात् पूर्व उपधा। अष्टा० १।१।६४॥
३. तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्। अष्टा० १।१।९॥
४. एकवचनं सम्बुद्धिः। अष्टा० २।३।४९॥
५. यू स्त्र्याख्यौ नदी। अष्टा० १।४।३॥ ङिति ह्रस्वश्च। अष्टा० १।४।६॥
६. शेषो घ्यसखि, पतिः समास एव। अष्टा० १।४।७; ८॥

(ख) ह्रस्व इकारान्त उकारान्त शब्द जो स्त्रीलिङ्ग में प्रयुक्त नहीं होते,उन को भी 'घि' संज्ञा होती है; पति और सखि शब्द को छोड़कर। यथा—अग्नि, वायु।

(ग) पति की समास में ही 'घि' संज्ञा होती है। यथा—गृहपति, प्रजापति।

सन्धि के सामान्य नियम

(१) यण् सन्धि—इ-ई, उ-ऊ, ऋ-ॠ लृ से परे असवर्ण (=असमान) कोई भी स्वर हो, तो पूर्ववर्ती इ-ई के स्थान में य्, उ ऊ के स्थान में व्, ऋ-ॠ के स्थान में र्, और लृ के स्थान में ल् हो जाता है[1] यथा—दधि+अत्र=दध्यत्र,कुमारी+अत्र=कुमार्यत्र। मधु+अत्र=मध्वत्र, वधू+आलयः=वध्वालयः। पितृ+आलयः=पित्रालयः,लृ+आकृतिः=लाकृतिः।

(२) अयादि सन्धि—ए ऐ ओ औ से परे कोई भी अच् (=स्वर) हो,तो ए के स्थान में अय्, ऐ के स्थान में आय्, ओ के स्थान में अव्, औ के स्थान में आव् हो जाता है[2]। यथा—चे+अयन=चय् अयन=चयन। चै+अक=चाय् अक=चायक। वायो+आयाहि=वायव् आयाहि=वायवायाहि। नौवो+आनय=नावाव् आनय=नावावानय।

(३) गुण सन्धि—अ-आ से परे इ-ई, उ-ऊ, ऋ ॠ, लृ अच् (=स्वर) परे हों,तो पूर्व पर दोनों वर्णों के स्थान में गुण (=क्रमशः =ए ओ अर् अल्)हो जाते हैं।[3]यथा—देव+इन्द्र=देव् ए न्द्र=देवेन्द्र।

---

१. इको यणचि। अष्टा० ६।१।७४॥

२. एचोऽयवायावः। अष्टा० ६।१।७५॥

३. आद्गुणः। अष्टा० ६।१।८४॥

महा+इन्द्र=मह् एन्द्र=महेन्द्र। देव+ईश=देव् ए श=देवेश। शुद्ध+उदक=शुद्ध ओ दक=शुद्धोदक। देव+ऋषि=देव् अर् षि=देवर्षि। तव+लृकार=तव् अल् कार=तवल्कार।

(४) **वृद्धि सन्धि**—अ आ से परे ए ऐ ओ औ अच् हों,तो दोनों अचों के स्थान पर वृद्धि (=ऐ औ) हो जाते हैं।[1] यथा—तव+एडका=तव् ऐ डका=तवैडका। तव+ऐतिकायन=तव् ऐ तिकायन=तवैतिकायन। तव+ओदन=तव् औ दन=तवौदन। तव+औपगव=तव् औ पगव=तवौपगव।

(५) **पररूप सन्धि**—पद के मध्य में अ से परे अ हो, तो दोनों के स्थान में एक पर अकार रह जाता है[2]। यथा—पच् अ अन्ति=पचन्ति।

(६) **सवर्णदीर्घ सन्धि**—अ आ, इ ई, उ ऊ, ऋ ॠ से परे सवर्ण (=समान) अच् हो, तो दोनों के स्थान में दीर्घ एक वर्ण हो जाता है।[3] यथा—तव+अत्र=तवात्र, आत्मा+अत्र=आत्मात्र। हरि+इन्द्र=हरीन्द्र, कुमारी+ईश=कुमारीश। मधु+उदक=मधूदक। पितृ+ऋणम्=पितॄणम्॥

---

१. वृद्धिरेचि। अष्टा० ६।१।८५।

२. अतो गुणे। अष्टा० ६।१।९४॥

३. अकः सवर्णे दीर्घः। ६।१।९७॥

चतुर्थ पाठ

हलन्त शब्द (१)

अब हम नाम शब्दों के रूपों का निर्देश करते हैं। नाम शब्द दो प्रकार के होते हैं—अजन्त (स्वरान्त), और हलन्त (व्यञ्जनान्त)। इन में से प्रथम हम हलन्त शब्दों के रूप बताते हैं।

हलन्त शब्दों में भी हम सब से प्रथम 'सुगण्' शब्द को लेते हैं। सुगण् शब्द का अर्थ है—अच्छे प्रकार गिननेवाला। यह तीनों लिङ्गों में प्रयुक्त होता है। सुगण् (पुल्लिङ्ग) अच्छे प्रकार गिननेवाला पुरुष, (स्त्रीलिङ्ग) अच्छे प्रकार गिननेवाली स्त्री, सुगण् (नपुंसकलिङ्ग) अच्छे प्रकार गिननेवाला कोई गणितज्ञ कुल। इन तीनों लिङ्गों में से पुल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग सुगण् शब्द के रूप एक समान ही चलते हैं। (नपुंसकलिङ्ग) के रूपों में कुछ भेद होता है, उसका निर्देश आगे करेंगे।

अब 'सुगण्' शब्द के आगे सातों विभक्तियों के तीनों वचनों के शुद्ध रूप रखिये, और देखिये कि 'सुगण्' शब्द के रूप कैसी सरलता से समझ में आते हैं—

प्रथमा	सुगण्-स्	सुगण्-औ	सुगण्-अस्
द्वितीया	सुगण्-अम्	सुगण्-औ	सुगण्-अस्
तृतीया	सुगण्-आ	सुगण्-भ्याम्	सुगण्-भिस्
चतुर्थी	सुगण्-ए	सुगण्-भ्याम्	सुगण्-भ्यस्
पञ्चमी	सुगण्-अस्	सुगण्-भ्याम्	सुगण्-भ्यस्

षष्ठी	सुगण्-अस्	सुगण्-ओस्	सुगण्-आम्
सप्तमी	सुगण्-इ	सुगण्-ओस्	सुगण्-सु
संबोधन	(हे) सुगण्-स्	(हे) सुगण्-औ	(हे) सुगण्-अस्

इस प्रकार सुगण् शब्द के आगे विभक्तियों के शुद्ध रूपों को जोड़ देने पर निम्न दो बातों पर ध्यान रखना होगा—

१. नियम—हलन्त शब्दों के अन्त में सु (=प्रथमा का एकवचन) हो, तो उसका लोप हो जाता है।[1]

प्रथमा विभक्ति के एकवचन 'सुगण् स्' रूप में अन्त में दो हल् व्यञ्जन हैं—एक ण्, दूसरा स्। दो हल् व्यञ्जनों का अन्त में उच्चारण नहीं हो सकता। इसलिये 'सुगण् स्' में से अन्त्य हल् स् का लोप हो जाता है, अर्थात् उच्चारण नहीं होता। इस प्रकार 'सुगण्' रूप शेष बचता है। यही प्रथमा विभक्ति का एकवचन का रूप है।

२. नियम—पद के अन्त में यदि स् हो, तो उसको विसर्ग हो जाता है।[2] यथा—

सुगण्-अस् (प्रथमा बहुवचन, द्वितीया बहुवचन, पञ्चमी-षष्ठी का एकवचन); सुगण्-भिस् (तृतीया बहुवचन); सुगण् भ्यस् (चतुर्थी पञ्चमी का बहुवचन), सुगण्-ओस् (षष्ठी सप्तमी का द्विवचन) इन रूपों में अन्त में वर्तमान हल् स् है, उसको विसर्ग (:) हो जाता है। इसलिये इन सब रूपों में स् को विसर्ग कर देना चाहिये। जैसे—सुगण् अस्=सुगणः, सुगण्भिः, सुगण्भ्यः, सुगणोः।

अब उक्त दोनों नियमों को ध्यान में रखकर 'सुगण्' से आगे प्रत्ययों को जोड़कर रूप बोलिये—

---

१. हलङ्याब्भ्यो दीर्घात् सुतिस्यपृक्तं हल् ।अष्टा० ६।१।६८॥

२. ससजुषो रुः ।अष्टा० ८।२।६६॥ खरवसानयोर्विसर्जनीयः ।अष्टा० ८।३।१५॥

सुगण् स्=सुगण्	सुगण् औ=सुगणौ	सुगण् अस्=सुगणः
सुगण् अम्=सुगणम्	सुगण् औ=सुगणौ	सुगण् अस्=सुगणः
सुगण् आ=सुगणा	सुगण् भ्याम्=सुगण्भ्याम्	सुगण् भिस्=सुगण्भिः
सुगण् ए=सुगणे	सुगण् भ्याम्=सुगण्भ्याम्	सुगण् भ्यस्=सुगण्भ्यः
सुगण् अस्=सुगणः	सुगण् भ्याम्=सुगण्भ्याम्	सुगण् भ्यस्=सुगण्भ्यः
सुगण् अस्=सुगणः	सुगण् ओस्=सुगणोः	सुगण् आम्=सुगणाम्
सुगण् इ=सुगणि	सुगण् ओस्=सुगणोः	सुगण् सु=सुगण्सु

संबोधन में भी प्रथमा विभक्ति के प्रत्यय ही जुड़ते हैं। इसलिये उस में भी प्रथमा विभक्ति के समान ही रूप बनते हैं। संबोधन का ज्ञान करने के लिए आरम्भ में हे शब्द जोड़ दिया जाता है। अतः संबोधन के रूप होंगे—

हे सुगण्	हे सुगणौ	हे सुगणः

अब हम 'सुगण्' शब्द के सातों विभक्तियों के तीनों वचनों में शुद्ध रूप लिखते हैं—

सुगण् (पुँल्लिंग, स्त्रीलिङ्ग)

प्रथमा	सुगण्	सुगणौ	सुगणः
द्वितीया	सुगणम्	"	"
तृतीया	सुगणा	सुगण्भ्याम्	सुगण्भिः
चतुर्थी	सुगणे	"	सुगण्भ्यः
पञ्चमी	सुगणः	"	"
षष्ठी	"	सुगणोः	सुगणाम्
सप्तमी	सुगणि	"	सुगण्सु
सम्बोधन	—हे सुगण्	हे सुगणौ	हे सुगणः

'सुगण्' के समान रूपवाले अन्य शब्द—सुगण् के समान जिन शब्दों के रूप चलते हैं, उन में से कुछ ये हैं—

सुगुण् (=अच्छे प्रकार गुणा करनेवाला), यञ्[1] (प्रत्याहार), डुभृञ् भृञ्[1] (आदि धातुएं), हल्[1] (प्रत्याहार), द्वार् (=दरवाजा) आदि।

'द्वार्' रेफान्त शब्द के प्रथमा के एकवचन द्वार्-स् में स् का (नियम १ से) लोप हो जाने पर 'द्वार्' बचता है। पद के अन्त में विद्यमान र् को भी विसर्ग हो जाता है। यथा—द्वाः॥

पञ्चम पाठ

हलन्त शब्द (२)

इस पाठ में हम हलन्त शब्दों में से उन शब्दों के रूप बतायेंगे, जिन के अन्त में किसी भी वर्ग[2] के प्रथम (=क् च् ट् त् प्) अक्षर, तृतीय (=ग् ज् ड् द् ब्) अक्षर, और चतुर्थ (=घ् झ् ढ् ध् भ्) अक्षर में से कोईसा अक्षर होगा। यथा—सरट्[3], सरित्, सुप्, सरड्[3], शरद्, समिध्, ककुभ् आदि।

---

१. यञ् हल् आदि प्रत्याहारों, और कृञ् आदि धातुओं से सु आदि प्रत्ययों का प्रयोग अष्टाध्यायी में देखा जाता है। अतः इन के रूपों का ज्ञान कराने के लिए हमने इन का यहां निर्देश किया है।

२. वर्ग पांच हैं—कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग और पवर्ग। प्रत्येक में पांच पांच अक्षर हैं।

३. 'सरट्' टकारान्त और 'सरड्' डकारान्त दो समानार्थक शब्द हैं।

इन शब्दों के रूप भी प्रायः 'सुगण' के समान ही विभक्तियों के जोड़ने पर बन जाते हैं, परन्तु कुछ रूपों में भेद होता है। उनके नियम और रूप हम आगे लिखते हैं—

सरट् (छिपकली) स्त्रीलिङ्ग

'सरट्' शब्द पुंलिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग दोनों में प्रयुक्त होता है। इसके रूप चलाने केलिये निम्न नियमों को ध्यान में रखना चाहिये—

३. **नियम**—वर्ग के प्रथम अक्षर (क् च् ट् त् प्) जिनके अन्त में हों, उनको सु (प्रथमा के एकवचन) का लोप हो जाने पर पदान्त में उसी वर्ग का तृतीय अक्षर (ग् ज् ड् द् ब्) विकल्प से हो जाता है। अर्थात् एक बार होता है एक बार नहीं होता।[1] यथा—सरट्—स्=सरट्-सरड्, सरित्—स्=सरित्-सरिद्, सुप् स्=सुप् सुब्।

४. **नियम**—वर्ग के प्रथम अक्षर को भकारादि प्रत्यय (भ्याम् भिस् भ्यस्) के परे रहते पर उसी वर्ग का तृतीय अक्षर हो जाता है[2]। यथा—सरट्+भ्याम्=सरड्भ्याम्, सरित्+भ्याम्=सरिद्भ्याम्, सुप्+भ्याम्=सुब्भ्याम्।

अब इन नियमों को ध्यान में रख कर 'सरट्' के रूप चलाइये—

सरट्-सरड्	सरटौ	सरटः
सरटम्		

द्रष्टव्य—'सरतेरटिः' (पञ्चपादी उणादि ५।१३४); 'सरतेरडिः' (डकारान्त प्रकरण में दशपादी उणादि ५।१०) सूत्र।

१. झलां जशोऽन्ते। अष्टा० ८।२।३९॥ वावसाने। अष्टा० ८।४।५५॥
२. झलां जशोऽन्ते। अष्टा० ८।२।३९॥

सरटा	सरड्भ्याम्	सरड्भिः
सरटे	,,	सरड्भ्यः
सरटः	,,	,,
सरटः	सरटोः	सरटाम्
सरटि	,,	सरट्सु
हे सरट्-सरड्	हे सरटौ	हे सरटः

सरट् शब्द के समान ही निम्न शब्दों के रूप भी चलते हैं—

मरुत् (वायु, पुं०), सरित् (नदी, स्त्री०), महत् (बड़ा, पुं०), हरित् (हरा रंग, पुं०), सुप् (प्रत्याहार, पुं०), लिङ् (प्रत्यय, पुं०), अक् (प्रत्याहार, पुं०) आदि।

चकारान्त वाच् शब्द में कुछ विशेष है, उसके रूप आगे बतावेंगे।

शरद् (शीत ऋतु) स्त्रीलिङ्ग

शरद् शब्द के रूप चलाने के लिए निम्न नियमों को ध्यान में रखना चाहिये—

५. नियम—सु (प्रथमा एकवचन) में स् का लोप हो जाने पर पदान्त में वर्तमान तृतीय अक्षर को विकल्प से उसी वर्ग का प्रथम अक्षर (क् च् ट् त् प्) हो जाता है[1]। यथा—शरद् से शरत्-शरद्।

६. नियम—सुप् (सप्तमी बहुवचन) परे रहने पर तृतीय अक्षर को उसी वर्ग का प्रथम अक्षर हो जाता है[2]। यथा—शरद्—सु = शरत्सु।

१. वाऽवसाने । अष्टा० ८।४।५६।।

२. खरि च । अष्टा० ८।४।५५।।

इन नियमों को ध्यान में रख कर शरद् शब्द के रूप चलाइये–

शरत्-शरद्	शरदौ	शरदः
शरदम्	"	"
शरदा	शरद्भ्याम्	शरद्भिः
शरदे	"	शरद्भ्यः
शरदः	"	"
"	शरदोः	शरदाम्
शरदि	"	शरत्सु
हे शरत्-शरद्	हे शरदौ	हे शरदः

'शरद्' शब्द के समान ही निम्न शब्दों के रूप चलते हैं—

तमोनुद् (सूर्य पुं०), बेभिद् (बारबार फाड़ने वाला, पुं० स्त्री) सरड् (छिपकली, पुं० स्त्री०) आदि।

संमध (समिधा) स्त्रीलिङ्ग

समिध् शब्द के रूप चलाने के लिए निम्न नियमों को ध्यान में रखना चाहिये—

७. नियम—'सु' (प्रथमा एकवचन) में स् का लोप हो जाने पर पदान्त में वर्त्तमान चतुर्थ अक्षर को उसी वर्ग का प्रथम और तृतीय अक्षर विकल्प से हो जाता है।[1] यथा—समिध् स् =समित्-समिद्।

८. नियम—भकारादि (भ्याम् भिस् भ्यस्) प्रत्यय परे रहने पर चतुर्थ अक्षर के स्थान में उसी वर्ग का-तृतीय अक्षर-(ग् ज् ड् द् ब्)

१. झलां जशोऽन्ते। अष्टा०८।२।३९॥ वावसाने। अष्टा०८।४।५५॥

हो जाता है[1]। यथा—समिध्—भ्याम्=समिद्भ्याम्; ककुब्भ्याम्।

६. नियम—सुप् (सप्त० बहु०) परे रहने पर चतुर्थ अक्षर को उसी वर्ग का प्रथम अक्षर (क् च् ट् त् प्) हो जाता है[2]। यथा—समिध्—सु=समित्सु; ककुप्सु।

अब इन नियमों को ध्यान में रखकर 'समिध्' शब्द के रूप चलाइये—

समित्-समिद्	समिधौ	समिधः
समिधम्	,,	,,
समिधा	समिद्भ्याम्	समिद्भिः
समिधे	,,	समिद्भ्यः
समिधः	,,	,,
,,	समिधोः	समिधाम्
समिधि	,,	समित्सु
हे समित्-समिद्	हे समिधौ	हे समिधः

'समिध्' शब्द के समान ही निम्न शब्दों के रूप चलते हैं—

क्षुध् (भूख, स्त्री०), सुयुध् (अच्छा योद्धा, पुं० स्त्री), ककुभ् (दिशा, स्त्री०), अनुष्टुभ् (३२ अक्षर का छन्द, स्त्री०), त्रिष्टुभ् (४४ अक्षर का छन्द, स्त्री०) आदि।

अग्निमथ् (अग्नि का मन्थन करनेवाला) पुँल्लिङ्ग

'अग्निमथ्' शब्द के रूप चलाने के लिये समिध् शब्द के नियम ही लगेंगे। अर्थात्—

---

१. झलां जशोऽन्ते। अष्टा० ८।२।३९॥

२. झलां जशोऽन्ते। अष्टा० ८।२।३९॥ खरि च। अष्टा० ८।४।५४॥

(क) सु (प्र० एक०) में स् का लोप होने पर द्वितीय अक्षर को उसी वर्ग को प्रथम और तृतीय अक्षर विकल्प से हो जाता है (देखो-नियम ७)। यथा—अग्निमथ्-स् = अग्निमत्-अग्निमद्।

(ख) भकारादि (भिस्, भ्याम्, भ्यस्) विभक्ति परे रहने पर द्वितीय अक्षर को उसी वर्ग का तृतीय अक्षर हो जाता है (देखो-नियम ८)। यथा— अग्निमथ्-भ्याम् = अग्निमद्भ्याम्।

(ग) सुप् (स० बहु०) परे रहने पर द्वितीय अक्षर को उसी वर्ग का प्रथम अक्षर हो जाता है (देखो—नियम ९)। यथा—अग्निमथ्-सु = अग्निमत्सु।

इन नियमों के अनुसार 'अग्निमथ्' के रूप चलाइये—

अग्निमत्-अग्निमद्	अग्निमथौ	अग्निमथः
अग्निमथम्	,,	,,
अग्निमथा	अग्निमद्भ्याम्	अग्निमद्भिः
अग्निमथे		अग्निमद्भ्यः
अग्निमथः	,,	
,,	अग्निमथोः	अग्निमथाम्
अग्निमथि		अग्निमत्सु
हे अग्निमत्-अग्निमद्	हे अग्निमथौ	हे अग्निमथः

'अग्निमथ्' शब्द के समान ही सुलिख् (=अच्छा लिखने वाला; पुं० स्त्री०) के रूप चलेंगे। परन्तु 'सु' (सप्तमी बहु०) परे 'ख्' को क् हो जाने पर—

१०. नियम— क् से परे और अ से भिन्न अन्य अचों (इ ई, उ ऊ,

ऋ, ए ऐ, ओ औ) से परे 'सु' (सप्तमी बहु०) के स् को ष् (षु) हो जाता है[1]। यथा—सुलिख् सु=सुलिक् षु=सुलिक्षु[2]।

शेष सभी रूप अग्निमथ् के समान ही जानें।

षष्ठ पाठ

हलन्त शब्द (३)

इस पाठ में चवर्गान्त और नकारान्त शब्दों के रूप बतायेंगे। चवर्गान्त शब्दों में एक ही नियम नया लगता है। शेष सभी नियम पूर्ववत् ही लगते हैं। नया नियम—

११. नियम—चकारान्त और जकारान्त शब्दों को हलादि (व्यञ्जनादि) विभक्तियाँ (सु भ्याम् भिस् भ्यस् सुप्) के परे रहने पर च् को क्, और ज् को ग् हो जाता है[3]। यथा—वाच्-स्=वाक्, ऋत्विज-स्=ऋत्विग्।

क् ग् आदेश हो जाने पर शेष नियम (सरद्, शरद्, और

---

१. आदेशप्रत्यययोः। अष्टा० ८।३।५९।

२. क+ष् का संयुक्त रूप ही उक्त प्रकार से लिखा जाता है।

३. चोः कुः। अष्टा० ८।२।३०।

सुलिख् में लिखे हुए) लगकर वाक्-वाग्, वाग्भ्याम्, वाक्षु; ऋत्विक्-ऋत्विग्, ऋत्विग्भ्याम् ऋत्विक्षु आदि बनते हैं।

अब नये नियम के साथ पूर्व नियमों को ध्यान में रखकर 'वाच्' और 'ऋत्विज्' शब्द के रूप चलाइये—

वाच् (वाणी) स्त्रीलिङ्ग

वाक्-वाग्[1]	वाचौ	वाचः
वाचम्	"	"
वाचा	वाग्भ्याम्[2]	वाग्भिः
वाचे	"	वाग्भ्यः
वाचः	"	"
वाचः	वाचोः	वाचाम्
वाचि	"	वाक्षु[3]
हे वाक्-वाग्	हे वाचौ	हे वाचः

'वाच्'-शब्द के समान ही निम्न शब्दों के रूप भी चलते हैं—

त्वच् (चमड़ी, स्त्री), शुच् (शोक करनेवाला, पुं० स्त्री०) स्रुच् (यज्ञ में आहुति देने का विशेष पात्र, स्त्री०) आदि।

ऋत्विज् (यज्ञ करनेवाला) पुँल्लिङ्ग

ऋत्विक्-ऋत्विग्[4]	ऋत्विजौ	ऋत्विजः
ऋत्विजम्	"	"

---

१. स्मरण करिये नियम ११ और ३।

२. स्मरण करिये नियम ११ और ४।

३. स्मरण करिये नियम ११ और १०।

४. स्मरण करिये नियम ११ और ५।

ऋत्विजा	ऋत्विग्भ्याम्[1]	ऋत्विग्भिः
ऋत्विजे	"	ऋत्विग्भ्यः
ऋत्विजः	"	"
"	ऋत्विजोः	ऋत्विजाम्
ऋत्विजि	"	ऋत्विक्षु[2]
हे ऋत्विक्-ऋत्विग्	हे ऋत्विजौ	हे ऋत्विजः

'ऋत्विज्' के समान ही निम्न शब्दों के रूप चलते हैं—

स्रज् (माला, स्त्री), **वणिज्** (बनिया, पुं०), **उशिज्** (कामना करनेवाला, पुं०), **भुरिज्** (एक अक्षर अधिकवाला कोई भी छन्द) आदि।

चवर्गान्त विशेष शब्द

चवर्गान्तों में कुछ जकारान्त और छकारान्त शब्द ऐसे हैं, जिन के रूपों में कुछ भिन्नता होती है। यथा—

१२. **नियम**—राज् सृज् मृज् यज् (का इज् रूप) और छ् जिन के अन्त में हों, उन के 'ज्' और 'छ्' को हलादि (सु भ्याम् भिस् सुप्) विभक्तियों के परे 'ड्' आदेश हो जाता है[3]। यथा—सम्राज्-स्=सम्राज्=सम्राड्। प्राच्छ्,स्=प्राछ्=प्राड्।

इसी प्रकार 'परिव्राज्' शब्द में भी 'ज्' को 'ड्' हो जाता है।[4]

---

१. स्मरण करिये नियम ११।

२. स्मरण करिये नियम ११,६,१०॥

३. व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः। अष्टा० ८।२।३६॥ झलां जशोऽन्ते। अष्टा० ८।२।३९॥

४. परौ व्रजेः षश्च पदान्ते। उणादि २।५९॥ झलां जशोऽन्ते। अष्टा० ८।२।३९॥

डकार आदेश होने पर सु सुप् प्रत्यय परे रहने पर नियम ५, ६ लगकर रूप इस प्रकार चलेंगे—

सम्राज् (बड़ा राजा) पुँल्लिङ्ग

सम्राट्-सम्राड्	सम्राजौ	सम्राजः
सम्राजम्	"	"
सम्राजा	सम्राड्भ्याम्	सम्राड्भिः
सम्राजे	"	सम्राड्भ्यः
सम्राजः	"	"
"	सम्राजोः	सम्राजाम्
सम्राजि	"	सम्राट्सु
हे सम्राट्-सम्राड्	हे सम्राजौ	हे सम्राजः

'सम्राज्' शब्द के समान ही निम्न शब्दों के रूप चलते हैं—

विराज् (दो अक्षर कमवाला छन्द), स्वराज् (दो अक्षर अधिकवाला छन्द), परिव्राज् (संन्यासी, पु०), रज्जुसृज् (रस्सी बनानेवाला, पु०), परिमृज् (साफ करनेवाला, पु०), देवेज् (देवों की पूजा करनेवाला, पु०) आदि।

प्राच्छ्[1] (पूछनेवाला) पुँल्लिङ्ग

प्राट्-प्राड्	प्राच्छौ	प्राच्छः
प्राच्छम्	"	"
प्राच्छा	प्राड्भ्याम्	प्राड्भिः
प्राच्छे	"	प्राड्भ्यः

१. 'छ' से पूर्व 'च' का आगम सर्वत्र हो जाता है। यथा—गम् = गछ् = गच्छ = गच्छति; इष् — इछ् = इच्छ् = इच्छति।

प्राच्छः	प्राड्भ्याम	प्राड्भ्यः
,,	प्राच्छोः	प्राच्छाम्
प्राच्छि	,,	प्राट्सु
हे प्राट्-प्राड्	हे प्राच्छौ	हे प्राच्छः

'प्राच्छ्' के समान ही शब्दप्राच्छ्, न्यायप्राच्छ् आदि के रूप चलते हैं।

नकारान्त शब्द

नकारान्त शब्द कई प्रकार के हैं। उन के रूपों में भी कुछ भेद होता है। यथा—'इन्' अन्तवाले 'दण्डिन्' आदि, 'अन्' अन्तवाले 'राजन्' आदि। 'अन्' अन्तवाले भी दो प्रकार के हैं। एक में 'शस् टा ङे ङसि ङस् ओस् आम् ङि' विभक्तियों में अन् के अ का लोप होता है, कुछ में नहीं होता।

नकारान्तों के सामान्य नियम

१३. नियम—हलादि विभक्तियों (सु भ्याम् भिस् सुप्) के परे रहने पर नकारान्त शब्दों के नकार का लोप होता है[1]। यथा—दण्डिन्-भ्याम्=दण्डिभ्याम्; राजन्-भ्याम्=राजभ्याम्।

१४. नियम—सु विभक्ति (प्रथमा एकवचन) में न् स् में पहिले स् का लोप (नियम १ से) होता है, पीछे न् का लोप होता है। सम्बोधन में 'न्' का लोप नहीं होता।[2] यथा—दण्डिन् स्=दण्डिन्=दण्डि=दण्डी। सम्बोधन में 'दण्डिन्' रूप ही रहता है।

---

१. न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य। अष्टा० ८।२।७॥

२. न ङिसम्बुद्ध्योः। अष्टा० ८।२।८॥

'इन्' अन्तवाले नकारान्त शब्द

'इन्' अन्तवाले नकारान्त शब्दों में निम्न नियम विशेष हैं—

१५. नियम—प्रथमा एकवचन में 'इन्' के 'इ' को दीर्घ हो जाता है।[1] यथा—दण्डिन्-स्=दण्डिन्=दण्डि=दण्डी।

सम्बोधन के एकवचन में 'इन्' के 'इ' को दीर्घ नहीं होता[2]। यथा—हे दण्डिन्।

सुप् (स० बहु०) में न् का लोप होने पर नियम १०[3] से 'इ' से परे सु के सकार को षकार हो जाता है। यथा—दण्डिषु।

दण्डिन् (=दण्डा जिसके हाथ में है) पुँल्लिङ्ग

दण्डी	दण्डिनौ	दण्डिनः
दण्डिनम्	"	"
दण्डिना	दण्डिभ्याम्	दण्डिभिः
दण्डिने	"	दण्डिभ्यः
दण्डिनः	"	"
"	दण्डिनोः	दण्डिनाम्
दण्डिनि	"	दण्डिषु
हे दण्डिन्	हे दण्डिनौ	हे दण्डिनः

'दण्डिन्' शब्द के समान ही निम्न शब्दों के भी रूप चलते हैं—

धनिन् (धनवाला, पुं०), स्रग्विन् (माला धारण करने-

---

१. इन्हन्पूषार्यम्णां शौ; सौ च। अष्टा० ६।४।१२, १३॥

२. सूत्र ६।४।१३ में 'असम्बुद्धौ' की अनुवृत्ति होने से दीर्घ नहीं होता।

३. कु, इ ई, उ ऊ, ऋ, ए, ऐ, ओ, औ से परे स् को ष् हो जाता है।

वाला, पुं०), ब्रह्मवादिन् (वेद पढ़नेवाला, पुं०), साधुकारिन् (अच्छा करनेवाला पुं०),सोमयाजिन् (सोमयाग करनेवाला, पुं०) आदि।

'अन्' अन्तवाले शब्द

'अन्' अन्तवाले शब्दों में निम्न नियम सामान्यरूप से सभी शब्दों में लगते हैं—

१६. **नियम**—सर्वनामस्थान संज्ञावाले (सु औ जस् अम् औट्) प्रत्ययों के परे रहने पर 'न्' से पूर्ववर्ती 'अ' को दीर्घ(=आ)हो जाता है[1]। यथा—राजन् स्=राजान् स्=राजान्=राजा,[2] राजानौ। आत्मा, आत्मानौ।

१७. **नियम**—सम्बोधन के एकवचन(सम्बुद्धि) में न् से पूर्व को दीर्घ नहीं होता।[2] यथा—हे राजन्; हे आत्मन्।

उपधालोपी अन्-अन्तवाले शब्द

जिन अन्-अन्तवाले शब्दों में उपधा (अन् के न् से पूर्व)'अ' का लोप होता है, उन के रूप चलाने के लिए निम्न नियमों को ध्यान में रखना चाहिये—

१८. **नियम**—भ संज्ञा में, अर्थात् शस् टा ङे ङसि ङस् ओस् आम् प्रत्ययों के परे 'अन्' के 'अ' का लोप होता है[3]। यथा—राजन् शस्=राजन् अस्=राज् न् अस्=राज्ञ् अस्=राज्ञः[4]।

१. सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ। अष्टा० ६।४।८।।

२. अष्टा०६।४।८ का 'असम्बुद्धौ' अंश।

३. अल्लोपोऽनः। अष्टा० ६।४।१३४।।

४. ज् न् का संयोग ही ज्ञ् इस प्रकार लिखा जाता है।

१६. नियम—'ङि' (सप्तमी एकव०) के परे अन् के 'अ' का लोप विकल्प से होता है।[१] यथा—राजन् इ=राज् न् इ=राज्ञि-राजनि।

राजन् (राजा) पुँल्लिङ्ग

उपर्युक्त चार नियमों को ध्यान में रखकर राजन् शब्द के रूप इस प्रकार चलेंगे—

राजा	राजानौ	राजानः
राजानम्	"	राज्ञः
राज्ञा	राजभ्याम्	राजभिः
राज्ञे	"	राजभ्यः
राज्ञः	"	"
"	राज्ञोः	राज्ञाम्
राज्ञि-राजनि	"	राजसु
हे राजन्	हे राजानौ	हे राजानः

'राजन्' शब्द के अनुसार ही निम्न शब्दों के रूप चलते हैं—

स्थामन् (ठहरनेवाला, पुं०), **सुदामन्** (अच्छी रस्सीवाला, पुं०), **सुत्रामन्** (अच्छे प्रकार रक्षा करनेवाला, पुं०), **धरिमन्** (धारण करनेवाला, पुं०), **वृषन्** (बैल, पुं०) आदि।

विशेष—(क)सुत्रामन् धरिमन् वृषन् आदि जिन शब्दों में र वा ष का संयोग है,उन में सर्वत्र न् को ण् हो जाता है[२]। यथा—सुत्रामाणौ, धरिमाणौ, वृषाणौ। सुत्राम्णः, धरिम्णः, वृष्णः।

---

१. विभाषा ङिश्योः। अष्टा० ६।४।१३६॥

२. रषाभ्यां नो णः समानपदे; अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि। अष्टा० ८।४।१,२॥

(ख) पूषन् और अर्यमन् शब्दों को केवल सु (प्र० एकवचन) में ही दीर्घ होता है[1] (शेष सर्वनामस्थान प्रत्ययों में नही होता)। यथा—

पूषा	पूषणौ	पूषणः
पूषणम्	,,	पूष्णः
अर्यमा	अर्यमणौ	अर्यमणः
अर्यमणम्	,,	अर्यम्णः

शेष विभक्तियों में दोनों शब्दों के रूप 'राजन्' की तरह चलेंगे।

अनुपधालोपी अन्-अन्तवाले शब्द

जिन अन्-अन्तवाले शब्दों में उपधा (अन् के अ) का लोप नहीं होता, उन के रूप जानने के लिये निम्न नियम को ध्यान में रखना चाहिए—

२०. **नियम**—जिन अन्-अन्तवाले शब्दों में अन् से पूर्व व्यञ्जनों का संयोग है, और संयोग के अन्त में म् वा व् है, उन शब्दों में भ संज्ञा, अर्थात् शस् टा ङे ङसि ङस् ओस् आम् ङि परे रहने पर अन् के 'अ' का लोप नहीं होता।[2] यथा—आत्मनः, आत्मना। सुपर्वणः, सुपर्वणा।

व्याख्या—आत्मन् शब्द में अन् से पूर्व त् म् का संयोग है, उस में 'म्' अन्त में है। सुपर्वन् में अन् से पूर्व र् व् का संयोग है, उस में 'व्' अन्त में है। अतः यहां अन् की उपधा 'अ' का लोप नहीं होता। यह २० वां नियम १८, १९ नियमों से प्राप्त 'अ' लोप का निषेध करता है।

आत्मन् (आत्मा) पुँल्लिङ्ग

आत्मा	आत्मानौ	आत्मानः
आत्मानम्	,,	आत्मनः

१. इन्हन्पूषार्यम्णां शौ; सौ च। अष्टा० ६।४।१२,१३॥

२. न संयोगाद् वमन्तात्। अष्टा० ६।४।१३८॥

आत्मना	आत्मभ्याम्	आत्मभिः
आत्मने	,,	आत्मभ्यः
आत्मनः	,,	,,
,,	आत्मनोः	आत्मनाम्
आत्मनि	,,	आत्मसु
हे आत्मन्	हे आत्मानौ	हे आत्मानः

'आत्मन्' शब्द के समान ही निम्न शब्दों के रूप चलते हैं—

सुधर्मन् ('अच्छे प्रकार धारण करनेवाला'[1], पुं०), अश्मन् (पत्थर, पुं०) सुशर्मन् (अच्छे प्रकार हिंसा करनेवाला'[1], पुं०), यज्वन् (यज्ञ करनेवाला, पुं०), सुपर्वन् (अच्छे जोड़ोंवाला, पुं०), अथर्वन् (अथर्ववेद, पुं०), मातरिश्वन् (वायु, पुं०) आदि।

इन शब्दों में जिन में रेफ है, उन में 'न्' को 'ण्' पूर्ववत् हो जायेगा। यथा—सुशर्माणौ, सुशर्माणः आदि।

नकारान्त नपुंसकलिङ्ग शब्द

नकारान्त नपुंसकलिङ्ग शब्दों के रूप चलाने के लिये पूर्व नियमों के साथ निम्न सामान्य नियमों को भी ध्यान में रखना चाहिये—

२१. नियम—नपुंसकलिङ्गों में औ औट् (प्र० द्वि० का द्विवचन) के स्थान पर शी आदेश हो जाता है।[2] शी में से 'ई' शेष बचता है।

२२. नियम—जस् शस् (प्र० द्वि० का बहुवचन) के स्थान पर शि आदेश हो जाता है[3]। इस में से 'इ' शेष रहता है—

---

१. ये नाम प्राचीन इतिहास में राजविशेषों के भी हैं।

२. नपुंसकाच्च। अष्टा०७।१।१९॥

३. जश्शसोः शिः। अष्टा०७।१।२०॥

इन नियमों के अनुसार नपुंसकलिङ्ग की प्रथमा द्वितीया विभक्ति के प्रत्ययों का रूप इस प्रकार होता है—

सु	(शी) ई	(शि) इ
अम्	(शी) ई	(शि) इ

आगे की विभक्तियों के रूप पूर्ववत् ही होते हैं।

२३. नियम—नपुंसकलिङ्ग में अकारान्त शब्द को छोड़कर सभी अजन्त और हलन्त शब्दों में से सु (प्र० एक०) और अम् (द्वि० एक०) का लोप हो जाता है[1]। यथा—जन्मन् स्=जन्म, कर्म, वारि, मधु। इसी प्रकार अम् का भी लोप समझें।

२४. नियम—नपुंसकलिङ्ग में भी सु और अम् का लोप होने के पश्चात पदान्त न् का लोप हो जाता है[2]।

२५. नियम—जस् शस् के स्थान में हुए 'शि' आदेश के परे रहने-रहने पर नकार से पूर्व अच् (स्वर) को दीर्घ हो जाता है[3]। यथा—दण्डिन् इ=दण्डीनि, कर्मन् इ=कर्माणि।

२६. नियम—नपुंसकलिङ्ग में सम्बुद्धि (संबोधन के एकवचन) में नकार का लोप विकल्प से होता है।[4] यथा—हे दण्डि-दण्डिन्। हे जन्म-जन्मन्।

इसी प्रकार नियम १३ के अनुसार भ्याम् भिस् भ्यस् सुप् में भी न का लोप होता है।

---

१. स्वमोर्नपुंसकात्। अष्टा० ७।१।२३॥

२. नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य। अष्टा० ८।२।७॥

३. सर्वनामस्थाने चासंबुद्धौ। अष्टा० ६।४।८॥ सर्वनामस्थान-संज्ञा 'शि सर्वनामस्थानम्' (अष्टा० १।१।४१) से होती है।

४. वा नपुंसकानाम्। वार्तिक ८।२।८॥

इन नियमों के अनुसार 'दण्डिन्' शब्द के रूप चलाइये—

दण्डिन् (दण्ड जिस-गृह में है) नपुं०

दण्डि	दण्डिनी	दण्डीनि
दण्डि	दण्डिनी	दण्डीनि

अगली विभक्तियों में पुंल्लिङ्ग दण्डिन् के समान ही रूप चलते हैं। सम्बोधन में नियम २६ के अनुसार ये रूप होंगे—

हे दण्डि-दण्डिन्	हे दण्डिनी	हे दण्डीनि

अन्-अन्तवाले दो प्रकार के शब्द

अन्-अन्तवाले नपुंसकलिङ्ग शब्द भी दो प्रकार के हैं— उपधालोपी और अनुपधालोपी। अर्थात् जिन में अकार का लोप होता है, और जिनमें अकार का लोप नहीं होता। जिन शब्दों में 'अन्' से पूर्व व्यञ्जनों का संयोग है, और संयोग के अन्त में म् व् हैं; उन के अन् के 'अ' का लोप नहीं होता (देखिये नियम २०)। यथा—कर्मन्, पर्वन्। अन्य अन् अन्तवाले शब्दों में अन् के 'अ' का लोप होता है (देखिये नियम १८)। यथा—नामन्।

अनुपधालोपी 'कर्मन्' शब्द

कर्म	कर्मणी	कर्माणि
कर्म	कर्मणी	कर्माणि
कर्मणा	कर्मभ्याम्	कर्मभिः
कर्मणे	"	कर्मभ्यः
कर्मणः	"	"

कर्मणः	कर्मणोः	कर्मणाम्
कर्मणि	"	कर्मसु
हे कर्म-कर्मन्[1]	हे कर्मणी	हे कर्माणि

'कर्मन्' शब्द के समान ही निम्न शब्दों के रूप चलते हैं—

चर्मन् (चमड़ा), भस्मन् (राख), जन्मन् (उत्पत्ति), शर्मन् (सुख), पर्वन् (पर्व=जोड़) आदि।

उपधालोपी 'नामन्' शब्द

नामन् आदि उपधालोपी (=अ-लोपी) शब्दों के रूपों के लिए निम्न नियमों को ध्यान में रखना आवश्यक है—

२७. नियम – शी (प्रथमा द्वितीया के द्विवचन के स्थान पर हुआ आदेश) और ङि परे रहने पर अन् के अ का लोप विकल्प से होता है[2]। यथा—नामन् औ=नामन् शी=नामन् ई=नाम्नी-नामनी।

तृतीया आदि विभक्तियों में अजादि प्रत्ययों के परे रहने पर 'राजन्' के समान अन् के अ का लोप (देखो—नियम १८, १९) होकर निम्न रूप चलेंगे—

नाम	नाम्नी-नामनी	नामानि
"	" "	"
नाम्ना	नामभ्याम्	नामभिः
नाम्ने	"	नामभ्यः
नाम्नः	"	"
"	नाम्नोः	नाम्नाम्

१. देखिये—नियम २६।

२. विभाषा ङिश्योः। अष्टा० ६।४।१३६॥

नाम्नि-नामनि	नाम्नोः	नामसु
हे नाम-नामन्	हे नाम्नी-नामनी	हे नामानि

'नामन्' शब्द के समान ही निम्न शब्दों के रूप चलते हैं—

सामन् (सामवेद), लोमन् (लोम), रोमन् (रोम), व्योमन् (आकाश), और पामन् (चर्मरोग) आदि।

सप्तम पाठ

हलन्त शब्द (४)

इस पाठ में हम रेफान्त शकारान्त, और सकारान्त शब्दों के रूप दर्शाते हैं—

गिर् (वाणी) स्त्रीलिङ्ग

'गिर्' शब्द के रूपों के लिए निम्न नियमों को ध्यान में रखना चाहिये—

२८. नियम—हलादि (सु भ्याम् भिस् भ्यस् सुप्) विभक्तियों में र् की उपधा (= पूर्व इ) को दीर्घ हो जाता है।[1] यथा—गिर् भ्याम् = गीर्भ्याम्।

---

१. हलि च। अष्टा० ८।२।७७॥

२९. नियम—सु के स् का लोप होने पर रेफ को विसर्ग होता है।[1] यथा—गिर् स्=गीर्=गीः।

३०. नियम—सु (स० बहु०) के स् को ष् हो जाता है।[2]

इन नियमों के अनुसार 'गिर्' शब्द के रूप चलाइये—

गीः	गिरौ	गिरः
गिरम्	"	"
गिरा	गीर्भ्याम्	गीर्भिः
गिरे	"	गीर्भ्यः
गिरः	"	"
"	गिरोः	गिराम्
गिरि	"	गीर्षु
हे गीः	हे गिरौ	हे गिरः

'गिर्' शब्द के समान ही निम्न शब्दों के भी रूप चलेंगे—
धुर् (धुरा, स्त्री०), पुर् (नगर, स्त्री०) आदि।

दिश् (दिशा) स्त्रीलिङ्ग

'दिश्' शब्द के रूप चलाने के लिये निम्न नियमों को ध्यान में रखना चाहिये—

३१. नियम—हलादि (सु भ्याम् भिस् भ्यस् सुप्) विभक्तियों में 'श्' को 'क्' हो जाता है[3]। दिश् सु=दिक् सु=दिक् षु=दिक्षु।

१. खरवसानयोर्विसर्जनीयः। अष्टा० ८।३।१५॥

२. आदेशप्रत्यययोः; इण् कोः, नुम्विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि। क्रमशः अष्टा० ८।३।५९, ५७, ५८॥

३. क्विन्प्रत्ययस्य कुः। अष्टा० ८।२।६२॥

श् को क् हो जाने पर नियम ३ से प्रथमा के एकवचन में ग् विकल्प से हो जाता है=दिक्-दिग् । नियम ४ से भ्याम् भिस् भ्यस् में क् को ग् हो जाता है—दिक् भ्याम्=दिग्भ्याम् ।

उक्त नियमों के अनुसार 'दिश्' शब्द के रूप इस प्रकार बनते हैं—

दिक्-दिग्	दिशौ	दिशः
दिशम्	„	„
दिशा	दिग्भ्याम्	दिग्भिः
दिशे	„	दिग्भ्यः
दिशः	„	दिग्भ्यः
„	दिशोः	दिशाम्
दिशि	„	दिक्षु
हे दिक्-दिग्	हे दिशौ	हे दिशः

'दिश्' शब्द के समान ही नीचे लिखे शब्दों के रूप चलते हैं—

विश् (प्रजा, स्त्री०), **कीदृश्** (कैसा, पुं०), **सदृश्** (समान, पुं०), **घृतस्पृश्** (घृत को छूनेवाला=अग्नि, पुं०) आदि ।

सदृश् (समान) नपुंसकलिङ्ग

'सदृश्' शब्द के नपुंसकलिङ्ग में नीचे लिखे नियमों को ध्यान में रखकर रूप चलावें—

(क) नियम २१, २२ के अनुसार प्रथमा द्वितीया के द्विवचन और बहुवचन में क्रमशः शी (ई) और शि (इ) हो जाता है।

(ख) नियम २३ के अनुसार अकारान्त शब्दों को छोड़कर सभी अजन्तों और हलन्तों से परे सु (प्र० एक०) और अम् (द्वि० एक०) का लोप हो जाता है ।

३२. नियम—अजन्तों,तथा अन्तःस्थ और वर्ग के पञ्चम वर्ण को छोड़कर सभी हलन्तों से शि (जस् शस्) परे रहने पर अन्त्य अच् से परे नुम्[1] (न्) का आगम होता है[2]। यथा—धन शि=धन इ= धन न् इ=धनानि। सदृश् शि=सदृश् इ=सदृन्श् इ।

३३.नियम—पद के मध्य में वर्तमान 'न्'को अनुस्वार हो जाता है, अन्तःस्थ और पञ्चम वर्णों को छोड़कर अन्य हलों के परे रहने पर[3]। यथा—सदृन्श् इ=सदृंश् इ=सदृंशि।

तृतीयादि विभक्तियों के रूप 'दिश्' के समान चलते हैं।

सदृक्-सदृग्	सदृशी	सँदृंशि
,, ,,	,,	,,
सदृशा	सदृग्भ्याम्	सदृग्भिः
सदृशे	,,	सदृग्भ्यः
सदृशः	,,	,,
,,	सदृशोः	सदृशाम्
सदृशि	,,	सदृक्षु
हे सदृक्-सदृग्	हे सदृशी	हे सदृंशि

चन्द्रमस् (चन्द्रमा) पुँल्लिङ्ग

'चन्द्रमस्' शब्द के रूपों के ज्ञान के लिये निम्न नियमों को ध्यान में रखना चाहिये—

३४. नियम—सु परे रहने पर अस्-अन्तवाले शब्दों की उपधा

---

१. 'नुम्' में से उ म् हट जाते हैं, 'न्' शेष रहता है।

२. नपुंसकस्य झलचः। अष्टा ७।१।७२॥ मिदचोऽन्त्यात् परः। अष्टा० १।१।४६॥

३. नश्चापदान्तस्य झलि। अष्टा० ८।३।२४॥

(=अन्त्य से पूर्व अ) को दीर्घ होता है। सम्बुद्धि (सम्बो० एक०) में नहीं होता।[1] यथा—चन्द्रमस् स्=चन्द्रमस्=चन्द्रमास्=चन्द्रमाः (पद के अन्त के स् को विसर्ग हो जाता है)।

३५. नियम—भकारादि (भ्याम् भिस् भ्यस्) परे रहने पर स् को उ हो जाता है।[2] यथा—चन्द्रमस् भ्याम्=चन्द्रम उ भ्याम् (अब गुण सन्धि से अ उ के स्थान पर ओ हो जाता है)=चन्द्रमोभ्याम्।

३६. नियम—सुप् (स० बहु०) परे रहने पर स् को विसर्ग विकल्प से होता है।[3] यथा—चन्द्रमस् सु=चन्द्रमःसु-चन्द्रमस्सु।

अब इन नियमों को ध्यान में रखकर रूप चलाइये—

चन्द्रमाः	चन्द्रमसौ	चन्द्रमसः
चन्द्रमसम्	"	"
चन्द्रमसा	चन्द्रमोभ्याम्	चन्द्रमोभिः
चन्द्रमसे	"	चन्द्रमोभ्यः
चन्द्रमसः	"	"
"	चन्द्रमसोः	चन्द्रमसाम्
चन्द्रमसि	"	चन्द्रमःसु-चन्द्रमस्सु
हे चन्द्रमः	हे चन्द्रमसौ	हे चन्द्रमसः

'चन्द्रमस्' के समान ही निम्न शब्दों के रूप चलते हैं—

जातवेदस् (अग्नि, पुं०), **द्रविणोदस्** (अग्नि, पुं०), **अङ्गिरस्**

---

१. अत्वसन्तस्य चाधातोः। अष्टा० ६।४।१४॥

२. भ्याम् आदि परे पदसंज्ञा होने से 'ससजुषो रुः' (अष्टा० ८।२।६६) से स् को रु, रु के र् को 'हशि च' (अष्टा० ६।१।११०) से उ होता है।

३. स् को रु, रु के र को खरवसानयोर्विसर्जनीयः (अष्टा० ८।३।१५) से विसर्ग। विसर्जनीयस्य सः; वा शरि। अष्टा० ८।३।३४,३६॥

(ऋषिविशेष, पुं०), पुरोधस् (पुरोहित, पुं०), वेधस् (चन्द्रमा, पुं०) आदि।

मनस् (मन) नपुंसकलिङ्ग

'मनस्' शब्द के रूप चलाने के लिये निम्न नियमों को ध्यान में रखना चाहिये—

३७. **नियम**—शि (जस् शस्) परे नियम ३२ से नुम् (न्) होने पर सकारान्त शब्दों में न् से पूर्व अच् को दीर्घ हो जाता है[1]।

अब 'मनस्' शब्द के रूप चलाइये—

मनः	मनसी	मनांसि
मनः	मनसी	मनांसि

आगे 'चन्द्रमस्' के समान रूप चलते हैं—

मनसा	मनोभ्याम्	मनोभिः
मनसे	"	मनोभ्यः
मनसः	"	"
"	मनसोः	मनसाम्
मनसि	"	मनःसु-मनस्सु
हे मनः	हे मनसी	हे मनांसि

'मनस्' शब्द के समान ही निम्न सकारान्त नपुंसकलिङ्ग शब्दों के रूप चलते हैं—

पयस् (दूध-जल), **वचस्** (वचन), **श्रेयस्** (कल्याण), **सरस्** (तालाब), **तमस्** (अन्धकार), **रजस्** (धूल के कण) आदि।

यजुस् (यजुर्वेद) नपुंसकलिङ्ग

'यजुस्' शब्द के रूपों के लिए निम्न नियमों को ध्यान में रखना

---

१. सान्तमहतः संयोगस्य। अष्टा० ६।४।१०॥

चाहिये—

३८. **नियम**—अजादि विभक्तियों में इ उ से परे स् को ष् हो जाता है। यथा—यजुस् शी=यजुस् ई=यजुषी।

३९. **नियम**—भ्याम्, भिस्, भ्यस् परे, इकार उकार से परे स् को र् हो जाता है। यथा—यजुस् भ्याम्=यजुर् भ्याम्=यजुर्भ्याम्।

अब इन नये नियमों को ध्यान में रखकर रूप चलाइये—

यजुः	यजुषी	यजूंषि
”	”	”
यजुषा	यजुर्भ्याम्	यजुर्भिः
यजुषे	”	यजुर्भ्यः
यजुषः	”	”
”	यजुषोः	यजुषाम्
यजुषि	यजुषोः	यजुःषु-यजुष्षु
हे यजुः	हे यजुषी	हे यजूंषि

'यजुस्' शब्द के समान ही निम्न शब्दों के रूप चलते हैं—

धनुस् (धनुष), चक्षुस् (आंख), आयुस् (आयु), अर्चिस् (ज्वाला), हविस् (आहुति देने योग्य द्रव्य), ज्योतिस् (प्रकाश) आदि।

उष्णिह् (छन्दोविशेष) स्त्रीलिङ्ग

'उष्णिह्' शब्द के रूपों में निम्न नियम विशेष लगता है—

४०. **नियम**—हलादि (सु भ्याम् भिस् भ्यस् सुप्) परे रहने पर ह् को घ् हो जाता है।

घ् हो जाने पर 'समिध्' के समान (नियम ७, ८, ९ लगकर) ये रूप बनते हैं—

उष्णक्-उष्णिग्	उष्णिहौ	उष्णिहः
उष्णिहम्	"	"
उष्णिहा	उष्णिग्भ्याम्	उष्णिग्भिः
उष्णिहे	"	उष्णिग्भ्यः
उष्णिहः	"	"
"	उष्णिहोः	उष्णिहाम्
उष्णिहि	"	उष्णिक्षु
हे उष्णिक्-उष्णिग्	हे उष्णिहौ	हे उष्णिहः

इति हलन्त-प्रकरणम् ॥

आठवां पाठ

अजन्त शब्द (१)

अब हम अजन्त शब्दों के रूप बतलाते हैं। उन में पहिले हम 'नौ' शब्द के रूपों का निर्देश करते हैं—

नौ (नाव) स्त्रीलिङ्ग

'नौ' शब्द के रूपों के लिये निम्न नियमों को ध्यान में रखना चाहिये—

४१. नियम—स्त्रीलिङ्ग आकारान्त ईकारान्त कुछ शब्दों को छोड़कर, अ आ इ ई उ ऊ ओ औ जिन शब्दों के अन्त में होते हैं, उन शब्दों से परे सु (प्र० एकवचन) के 'स्' को विसर्ग हो जाता है[1]। यथा—नौ स्=नौः; देव स्=देवः; अग्नि स्=अग्निः।

विशेष (१) अजादि विभक्ति परे रहने पर अयादि-सन्धि[2] के नियम से औ को आव् हो जाता है। यथा—नौ औ=नाव् औ=नावौ, नावः।

(२) सुप् (स० बहु०) के स् को नियम-१० के अनुसार ष् हो जाता है। यथा—नौ सु=नौषु।

अब आप उक्त नियमों के अनुसार 'नौ' के रूप चलाइये—

नौः	नावौ	नावः
नावम्	,,	,,
नावा	नौभ्याम्	नौभिः
नावे	,,	नौभ्यः
नावः	,,	,,
,,	नावोः	नावाम्
नावि	,,	नौषु
हे नौः	हे नावौ	हे नावः

गो (गाय-बैल) पुं०-स्त्रीलिङ्ग

'गो' शब्द के रूपों के लिए निम्न नियमों को ध्यान में रखना चाहिये—

१. ससजुषो रुः (अष्टा० ८।२।६६) से रु, उकार का लोप होकर र् को खरवसानयोर्विसर्जनीयः (अष्टा० ८।३।१५) से विसर्ग। २. द्र०—पृ०३६।

४२. **नियम**—गो शब्द से सर्वनामस्थान प्रत्यय (सु औ जस् अम् औट्) परे रहने पर ओ को औ हो जाता है।[1] यथा=गो स्=गौः, गो औ=गौ औ=गाव् औ=गावौ (अयादि सन्धि से औ को आव्)।

४३. **नियम**—अम् (द्वि० एक०) और शस् (द्वि० बहु०) के परे रहने पर 'ओ' को 'आ' (गा) हो जाता है।[2] यथा=गो अम्=गा अम्=गाम्, गो शस्=गो अस्=गा अस्=गाः।

४४. **नियम**—एकार ओकार से परे ङसि ङस् के 'अ' को पूर्व-रूप अर्थात् लोप हो जाता है।[3] यथा—गो अस्=गोस्=गोः।

विशेष—सर्वनामस्थान और ङसि ङस् से भिन्न अजादि प्रत्यय (टा ङे ओस् आम् ङि) परे हों, तो ओ को अयादि सन्धि से अव् हो जाता है। यथा—गो टा=गो आ=गव् आ=गवा।

अब इन नियमों के अनुसार गो शब्द के रूप चलाइये—

गौः	गावौ	गावः
गाम्	,,	गाः
गवा	गोभ्याम्	गोभिः
गवे	,,	गोभ्यः
गोः	,,	,,
,,	गवोः	गवाम्
गवि	,,	गोषु
हे गौः	हे गावौ	हे गावः

१. गोतो णित् (अष्टा० ७।१।९०); अचो ञ्णिति (अष्टा० ७।२।११५)॥

२. औतोऽम्शसोः। अष्टा० ६।१।९०॥

३. ङसिङसोश्च (अष्टा० ६।१।१०६) से अ को पूर्वरूप अर्थात् लोप होता है।

'गो' शब्द के समान ही द्यो (सूर्य या द्युलोक, स्त्री०) के रूप चलते हैं ।

रै (धन) पुँल्लिङ्ग

'रै' शब्द के रूपों के लिये निम्न नियम ध्यान में रखना चाहिये—

४५. नियम—हलादि प्रत्यय (सु भ्याम् भिस् भ्यस् सुप्) पर रहने पर रै के ऐ को 'आ' आदेश (-रा) हो जाता है।[1] यथा—रै स्= रा स्= राः । राभ्याम् ।

विशेष—अजादि-प्रत्ययों में रै के ऐ को अयादि सन्धि के अनुसार आय् हो जाता है । यथा—रै औ=राय् औ=रायौ ।

अब 'रै' शब्द के रूप चलाइये—

राः	रायौ	रायः
रायम्	"	"
राया	राभ्याम्	राभिः
राये	राभ्याम्	राभ्यः
रायः	"	"
"	रायोः	रायाम्
रायि	"	रासु
हे राः	हे रायौ	हे रायः

सोमपा (सोम पीनेवाला) पुं० स्त्री०

'सोमपा' शब्द के रूपों के लिए निम्न नियमों को ध्यान में रखना चाहिये—

४६. नियम—अ आ से परे औ औट् (प्र० द्वि० द्विवचन)

१. रायो हलि । अष्टा० ७।२।१०९ ॥

हो, तो दोनों के स्थान पर वृद्धि सन्धि होती है, अर्थात् औ हो जाता है।[1] देव औ=देवौ; सोमपा औ=सोमपौ।

४७. नियम—धातु का आकार[2] जिस के अन्त में हो उसका लोप हो जाता है, भ संज्ञा अर्थात् सर्वनामस्थान से भिन्न अजादि प्रत्ययों के परे रहने पर।[3] यथा—सोमपा शस्=सोमपा अस्=सोमप् अस्= सोमपः। सोमपा।

इन नियमों के अनुसार 'सोमपा' शब्द के रूप इस प्रकार चलेंगे—

सोमपाः	सोमपौ	सोमपाः
सोमपाम्	,,	सोमपः
सोमपा	सोमपाभ्याम्	सोमपाभिः
सोमपे	,,	सोमपाभ्यः
सोमपः	,,	,,
सोमपः	सोमपोः	सोमपाम्
सोमपि	,,	सोमपासु
हे सोमपाः	हे सोमपौ	हे सोमपाः

'सोमपा' के समान ही निम्न शब्दों के रूप चलते हैं—

धूम्रपा (धूंआ पीनेवाला), विश्वपा (विश्व की रक्षा करनेवाला), गोपा (गौ की रक्षा करनेवाला), गोजा (किरणों में उत्पन्न, सूर्य), प्रथमजा (प्रथम उत्पन्न हुआ=विद्यमान-ब्रह्म), कूपखा (कुंआ

१. नादिचि (अ० ६।१।१००) से पूर्वसवर्ण दीर्घ के मना होने पर वृद्धिरेचि (अष्टा० ६।१।८५) से औ वृद्धि।

२. सोमं पिबति पाति वा सोमपाः। यहां अन्त में 'पा' धातु है।

३. आतो धातोः। अष्टा० ६।४।१४०॥

खोदनेवाला), दधिक्रा (अश्व), शङ्खध्मा (शंख बजानेवाला) आदि।

ह्रस्व अकारान्त पुंलिङ्ग शब्द से स्त्रीलिङ्ग में 'आ' प्रत्यय होकर जो आकारान्त शब्द बनते हैं; उनके रूप आगे बतायेंगे।

वारि (जल) नपुंसकलिङ्ग

इस शब्द के रूपों के लिये निम्न नियमों को ध्यान में रखना चाहिये—

४८. नियम—जिन नपुंसकलिङ्ग शब्दों के अन्त में इ उ ऋ अक्षर हैं उनको नुम् (न्) का आगम होता है, अजादि प्रत्यय परे रहने पर।[1] यथा—वारि ई=वारि नुम् ई=वारि न् ई=वारिणी, मधुनी। वारिणा मधुना। वारिणे, मधुने—न को ण पूर्ववत्।

४९. नियम—अ आ इ ई उ ऊ ऋ से परे आम् को नुट् (न्) का आगम होता है।[2] (यह आम् के पूर्व में होता है[3]) देव आम्=देव नुट् आम्=देव न् आम्, वारि आम्=वारि नुट् आम्=वारि न् आम्।

५०. नियम—नाम् (न् सहित आम्) परे रहने पर पूर्व अ इ उ ऋ को दीर्घ होता है।[4] यथा—देव न् आम्=देवा न् आम्=देवानाम्। वारिन् आम्=वारीणाम् (न को ण पूर्ववत्)।

५१. नियम—सम्बोधन के एकवचन में स् का लोप होने पर इ उ ऋ को क्रमशः ए ओ अर् विकल्प से होते हैं। यथा—हे वारे-वारि, हे मधो-मधु; हे कर्तः-कर्तृ।

---

१. इकोऽचि विभक्तौ। अष्टा ७।१।७३।

२. ह्रस्वनद्यापो नुट्। अष्टा० ७।१।५४।।

३. आद्यन्तौ टकितौ। अष्टा० १।१।४५।।

४. नामि। अष्टा० ६।४।३।।

पूर्व नियम स्मरण करें—

(क) नियम २३ के अनुसार अकारान्त शब्दों को छोड़कर सभी अजन्त और हलन्त नपुंसकलिङ्ग से परे सु अम् का लोप होता है। वारि स्=वारि, वारि अम्=वारि।

(ख) नियम २५ के अनुसार शि (जस् शस्) परे रहने पर (नुम्)न् से पूर्व अच् को दीर्घ होता है। यथा—वारि न् इ=वारीणि।

अब वारि शब्द के रूप चलाइये—

वारि	वारिणी	वारीणि
"	"	"
वारिणा	वारिभ्याम्	वारिभिः
वारिणे	"	वारिभ्यः
वारिणः	"	"
"	वारिणोः	वारीणाम्
वारिणि	"	वारिषु
हे वारे-वारि	हे वारिणी	हे वारीणि

वारि शब्द के समान ही निम्न इकारान्त उकारान्त और ऋकारान्त शब्दों के रूप चलते हैं—

इकारान्त—अतिरि (धन की आकांक्षा न करनेवाला ब्राह्मण कुल), उकारान्त—मधु (शहद), वस्तु; ऋकारान्त—कर्तृ हर्तृ (कुल के विशेषण रूप में)। यथा—

मधु—मधु	मधुनी	मधूनि
"	"	"
" मधुना	मधुभ्याम्	मधुभिः
हे मधो-मधु	हे मधुनी	हे मधूनि

कर्तृ—कर्तृ	कर्तृणी	कर्तॄणि
,,	,,	,,
कर्तृणा	कर्तृभ्याम्	कर्तृभिः
हे कर्त्तः-हेकर्तृ	हे कर्तृणी	हे कर्तॄणि
,,		

नवम पाठ

अजन्त शब्द (२)

लक्ष्मी (सम्पत्ति) स्त्रीलिङ्ग

दीर्घ ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द दो प्रकार के हैं। एक वे हैं—जो स्वभाव से ही दीर्घ ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग में प्रयुक्त होते हैं। यथा—लक्ष्मी तरी स्तरी आदि। दूसरे वे हैं—जो पुंल्लिङ्ग अकारान्त शब्द से स्त्रीलिङ्ग में ङी (ई) प्रत्यय होकर स्त्रीलिङ्ग बनते हैं। यथा—नद-नदी, कुमार-कुमारी;ब्राह्मणी,गौरी। दोनों प्रकार के शब्दों के रूप प्रायःएक जैसे ही चलते हैं,केवल प्रथमा विभक्ति के एकवचन सु के रूपों में ही भेद होता है। प्रथम प्रकार के स्त्रीलिङ्ग से परे सु का लोप नहीं होता, उसे विसर्ग हो जाता है। यथा—लक्ष्मीः। दूसरे प्रकार के शब्दों में सु का लोप[1] हो जाने से विसर्ग नहीं होता। यथा—कुमारी; ब्राह्मणी।

---

१. हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात् सुतिस्यपृक्तं हल्। अष्टा० ६।१।६८॥

अब आप दीर्घ ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूपों के ज्ञान के लिये निम्न नियमों को ध्यान में रखें—

५२. नियम—दीर्घ ईकारान्त ऊकारान्त शब्दों के रूपों में अजादि प्रत्यय परे रहने पर यण् सन्धि होकर ई को य्,और ऊ को व् होता है। यथा—लक्ष्मी औ=लक्ष्म्यौ; चम्वौ।

५३. नियम—अ आ इ ई उ ऊ ऋ जिन के अन्त में हैं, उन से परे शस् (द्वि० बहु० के) अकार और पूर्व वर्ण दोनों के स्थान में पूर्व वर्ण का सवर्णी दीर्घ हो जाता है।[1] यथा—देव शस्=देव अस्=देव् आ स्=देवान्[2], विद्या शस्=विद्या अस्=विद्यास्=विद्याः,अग्नि अस्=अग्न् ई स्=अग्नीन्[2], लक्ष्मी शस्=लक्ष्मी अस्=लक्ष्मी स्=लक्ष्मीः; चमूः।

५४. नियम—अ आ इ ई उ ऊ अच् जिनके अन्त में होते हैं, ऐसे शब्दों से परे अम् (द्वि० एक०) के 'अ' का लोप हो जाता है।[3] यथा—देव अम्=देव म्=देवम्; लक्ष्मी अम्=लक्ष्मी म्=लक्ष्मीम्।

५५. नियम—नदीसंज्ञक ईकारान्त ऊकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों से आगे ङे के ए को ऐ, ङसि ङस् (अस) के अ को आ, और ङि (इ) को आम् हो जाता है।[4] यथा—लक्ष्मी ङे=लक्ष्मी ए=लक्ष्मी ऐ=लक्ष्म्यै (यण् सन्धि); चम्वै। लक्ष्मी ङसि=लक्ष्म्याः। लक्ष्मी ङि=लक्ष्म्याम्।

---

१. प्रथमयोः पूर्वसवर्णः (अष्टा० ६।१।९७) से पूर्वसवर्ण दीर्घ।

२. स् को न् करने के लिये देखिये नियम ५८।

३. अमि पूर्वः (अष्टा० ६।१।१०३) से अम् के अ को पूर्वरूप।

४. आण्नद्याः (अष्टा० ७।३।११२) से ङित् प्रत्ययों को आट् का आगम [आ+ए=ऐ, आ+अस्=आस्। ङेराम्नद्याम्नीभ्यः (अष्टा०७।३।११६) से ङि को आम्।

५६. नियम—सम्बोधन के एकवचन में सु का लोप और दीर्घ ई ऊ को ह्रस्व हो जाता है।[1]

अब इन नियमों को ध्यान में रखकर रूप चलाइये—

लक्ष्मीः	लक्ष्म्यौ	लक्ष्म्यः
लक्ष्मीम्	"	लक्ष्मीः
लक्ष्म्या	लक्ष्मीभ्याम्	लक्ष्मीभिः
लक्ष्म्यै	"	लक्ष्मीभ्यः
लक्ष्म्याः	"	"
लक्ष्म्याः	लक्ष्म्योः	लक्ष्मीणाम्
लक्ष्म्याम्	"	लक्ष्मीषु
हे लक्ष्मि	हे लक्ष्म्यौ	हे लक्ष्म्यः

'लक्ष्मी' के समान ही निम्न शब्दों के रूप चलते हैं—

तरी (नौका), तन्त्री (वाद्यविशेष), स्तरी (ढकनेवाली), अवी (रक्षिका)।

स्त्रीप्रत्ययान्त ईकारान्त शब्द

जिन अकारान्त शब्दों से स्त्रीलिङ्ग में 'ङी' (ई) प्रत्यय होकर स्त्रीलिङ्ग शब्द बनते हैं (नद-नदी, कुमार-कुमारी, ब्राह्मण—ब्राह्मणी आदि) उनके रूप भी लक्ष्मी के समान ही चलते हैं। केवल प्रथमा के एकवचन में 'ङी' अन्तवाले शब्द से परे सु का लोप हो जाता है।[2] यथा—नदी सु=नदी, कुमारी, ब्राह्मणी। बस इतना ही भेद है।

नदी	नद्यौ	नद्यः
नदीम्	"	नदीः

१. अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः। अष्टा० ७।३।१०७॥

२. हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात् सुतिस्यपृक्तं हल्। अष्टा० ६।१।६८॥

नद्या	नदीभ्याम्	नदीभिः
नद्यै	,,	नदीभ्यः
नद्याः	,,	,,
,,	नद्योः	नदीनाम्
नद्याम्	,,	नदीषु
हे नदि	हे नद्यौ	हे नद्यः

नदी के समान ही निम्न शब्दों के रूप चलते हैं—

देवी, कुमारी, ब्राह्मणी, गौरी, श्रीमती, बुद्धिमती, भवती आदि।

चमू (सेना) स्त्रीलिङ्ग

चमू शब्द के रूप नदी शब्द के समान ही चलते हैं। केवल ऊ के स्थान में व् होता है।

चमूः	चम्वौ	चम्वः
चमूम्	चम्वौ	चमूः
चम्वा	चमूभ्याम्	चमूभिः
चम्वै	,,	चमूभ्यः
चम्वाः	,,	,,
,,	चम्वोः	चमूनाम्
चम्वाम्	,,	चमूषु
हे चमु	हे चम्वौ	हे चम्वः

चमू के समान ही निम्न शब्दों के रूप चलते हैं—

वधू (बहू), **जम्बू** (जामुन), **कर्कन्धू** (बेर), **यवागू** (लपसी), **श्वश्रू** (सास) आदि।

अग्नि (आग).पुँल्लिङ्ग

'अग्नि'शब्द के रूपों के ज्ञान के लिये निम्न नियमों को ध्यान में रखना चाहिये–

५७. **नियम**—ह्रस्व इकारान्त उकारान्त शब्दों से परे औ औट् (प्र०द्वि०द्विवचन)हो,तो अन्तिम स्वर इ और औ दोनों के स्थान पर पूर्वसवर्ण दीर्घ ईकार,तथा उ और औ दोनों के स्थान पर दीर्घ ऊकार हो जाता है।[1] यथा—अग्नि औ=अग्नी, वायु औ=वायू।

५८. **नियम**—शस् परे पूर्व नियम ५३ से पूर्वसवर्ण दीर्घ होने पर पुंल्लिङ्ग में शस् के स् को न् हो जाता है।[2] यथा—देवान्। अग्नीन्। वायून्। पितॄन्।

५९. **नियम**—जस् ङे ङसि ङस् परे रहने पर पूर्व इ उ को गुण (क्रमशः ए ओ) हो जाता है।[3] यथा—अग्नि अस्=अग्ने अस्= अग्नय् अस्=अग्नयः (अयादि सन्धि से अय्)। वायु अस्=वायो अस्=वायवः। अग्नि ङे=अग्नि ऐ=अग्ने ऐ=अग्नय् ए=अग्नये; वायवे।

ङसि ङस् में अग्नि वायु के इ उ को ए ओ होने पर पूर्व नियम ४४ से अस् के अ को पूर्वरूप अर्थात् लोप हो जाता है। यथा—अग्नि ङसि =अग्नि अस्=अग्ने स्=अग्नेः; वायोः।

६०. **नियम**—हृस्व इकारान्त उकारान्त घिसंज्ञक शब्द से परे टा को 'ना' आदेश हो जाता है।[4] यथा—अग्नि टा=अग्नि आ=

---

१. प्रथमयोः पूर्वसवर्णः। अष्टा० ६।१।९८॥

२. तस्माच्छसो नः पुंसि।अष्टा० ६।१।९९॥

३. जसि च; घेर्ङिति। अष्टा० ७।३।१०९, १११॥

४. आङो नाऽस्त्रियाम्। अष्टा० ७।३।११९॥

अग्निना; वायुना।

ओस् परे इ को य्, उ का व्, ऋ को र् यण् सन्धि से हो जाता है। अग्नि ओस् = अग्न्य् ओस् = अग्न्योः; वाय्वोः; पित्रोः।

६१. नियम— घिसंज्ञक इकारान्त उकारान्त शब्द से परे ङि को औ और इ, उ को अ हो जाता है।[1] यथा—अग्नि ङि = अग्नि इ = अग्नि औ = अग्न औ, वाय औ। इस अवस्था में वृद्धि सन्धि से औ होकर अग्नौ वायौ रूप बनते हैं।

६२. नियम—ह्रस्व इकारान्त उकारान्त शब्दों को संबुद्धि (सम्ब० एकवचन) में इ उ को गुण ए ओ होकर स् का लोप हो जाता है।[2] यथा—अग्नि स् = अग्ने स् = अग्ने, वायो।

इन नियमों के अनुसार 'अग्नि' के रूप चलाइये—

अग्निः	अग्नी	अग्नयः
अग्निम्	,,	अग्नीन्
अग्निना	अग्निभ्याम्	अग्निभिः
अग्नये	,,	अग्निभ्यः
अग्नेः	,,	,,
,,	अग्न्योः	अग्नीनाम्
अग्नौ	,,	अग्निषु
हे अग्ने	हे अग्नी	हे अग्नयः

'अग्नि' के समान ही ह्रस्व इकारान्त घिसंज्ञक पुंलिङ्ग निम्न शब्दों के रूप चलेंगे—

इकारान्त—रवि (सूर्य), कवि, भूपति (राजा), प्रजापति (राजा) आदि।

---

१. औद् अच्च घेः। अष्टा० ७।३।११८॥

२. संवुद्धौ च। अष्टा०७।३।१०६; एङ्ह्रस्वात् सम्बुद्धेः॥अष्टा०६।१।६७॥

वायु (पुंल्लिङ्ग)

इसके रूप अग्नि के समान ही चलते हैं। यथा—

वायुः	वायू	वायवः
वायुम्	"	वायून्
वायुना	वायुभ्याम्	वायुभिः
वायवे	"	वायुभ्यः
वायोः	"	"
"	वाय्वोः	वायूनाम्
वायौ	"	वायुषु
हे वायो	हे वायू	हे वायवः

वायु के समान ही उकारान्त निम्न शब्दों के रूप चलते हैं—

भानु (सूर्य), सूनु (लड़का), शम्भु प्रभु विभु (ईश्वर), विष्णु (ईश्वर, सूर्य), अध्वर्यु (एक ऋत्विक्) आदि।

पति और सखि शब्द

पति और सखि शब्द भी ह्रस्व इकारान्त पुंल्लिङ्ग हैं, परन्तु इनकी घि संज्ञा नहीं होती(देखो–घि संज्ञा नियम)। इसलिए टा ङे ङसि ङस् ङि विभक्तियों में इन के रूप भिन्न होते हैं। नियम इस प्रकार हैं—

घि संज्ञा न होने से टा को ना आदेश और ङे परे गुण नहीं होता। अतः यण् सन्धि से य् हो जाता है। यथा—पति आ=पत्या, सख्या। पति ङे=पति ए=पत्ये, सख्ये।

६३. नियम—पति और सखि से परे ङसि और ङस् के अकार को उकार हो जाता है[1]। पति ङसि=पति अस्=पति उस्=पत्युः, सख्युः (यण् सन्धि)।

---

१. ख्यत्यात् परस्य। अष्टा० ६।१।१०८॥

६४. नियम—पति और सखि से परे ङि को औ आदेश होता है।[1] यथा—पति ङि=पति इ=पति औ=पत्यौ, सख्यौ (यण् सन्धि)।

पतिः	पती	पतयः
पतिम्	"	पतीन्
पत्या	पतिभ्याम्	पतिभिः
पत्ये	"	पतिभ्यः
पत्युः	"	"
"	पत्योः	पतीनाम्
पत्यौ	"	पतिषु
हे पते	हे पती	हे पतयः

सखि शब्द पुंल्लिङ्ग

सखि शब्द के रूपों के लिए निम्न विशेष नियम जानने चाहियें—

६५. नियम—सु परे सखि के इ को अन् हो जाता है, परन्तु सम्बोधन में नहीं होता।[2] यथा—सखि स्=सख् अन् स्=सखन् =सखा (राजा के समान न् से पूर्व अ को दीर्घ और न् का लोप)।

६६. नियम—सखि शब्द को सु को छोड़कर शेष सर्वनामस्थान (औ जस् अम् औट्) प्रत्यय परे रहने पर वृद्धि (ऐ) हो जाता है[3]। यथा—सखि औ=सखै औ=सखाय् औ (अयादि सन्धि से आय् आदेश)=सखायौ, सखायः।

अब इन नियमों के अनुसार सखि के रूप चलाइये—

सखा	सखायौ	सखायः
सखायम्	"	सखीन्

१. औत्। अष्टा० ७।३।११८ का एक देश।

२. अनङ् सौ। अष्टा० ७।१।९३।

३. सख्युरसम्बुद्धौ। अष्टा० ७।१।९२॥

सख्या	सखिभ्याम्	सखिभिः
सख्ये	,,	सखिभ्यः
सख्युः	,,	,,
सख्युः	सख्योः	सखीनाम्
सख्यौ	,,	सखिषु
हे सखे	हे सखायौ	हे सखायः

ह्रस्व इकारान्त उकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द

'रुचि' शब्द के रूपों के लिए निम्न बातों पर ध्यान देना चाहिए

(क) शस् के सकार को न् पुंल्लिङ्ग में होता है, इसलिये यहां नहीं होगा। विसर्ग होकर रूप बनेगा—रुचीः; धेनूः।

(ख) टा को ना आदेश भी पुंल्लिङ्ग में ही कहा है, अतः वह यहां भी न होगा। यण् होकर रूप बनेगा—रुच्या; धेन्वा।

(ग) ङित् विभक्तियों (ङे ङसि ङस् ङि) में ह्रस्व इकारान्त उकारान्त की नदी संज्ञा विकल्प से कही है। नदी संज्ञा के अभाव में घि संज्ञा होती है।[1] इसलिए इन ङित् विभक्तियों में नदीसंज्ञा पक्ष में लक्ष्मी के समान, और घिसंज्ञा पक्ष में अग्नि के समान, अर्थात् दो-दो रूप होते हैं। यथा—

रुच्यै-रुचये	धेन्वै-धेनवे
रुच्याः-रुचेः	धेन्वाः-धेनोः
,, ,,	,, ,,
रुच्याम्-रुचौ	धेन्वाम्-धेनौ

रुचि (इच्छा) स्त्रीलिङ्ग

रुचिः	रुची	रुचयः
रुचिम्	,,	रुचीः

१. ङिति ह्रस्वश्च; शेषो घ्यसखि। अष्टा० १।४।६, ७।

रुच्या	रुचिभ्याम्	रुचिभिः
रुच्यै-रुचये	,,	रुचिभ्यः
रुच्याः-रुचेः	,,	,,
,, ,,	रुच्योः	रुचीनाम्
रुच्याम्-रुचौ	,,	रुचिषु
हे रुचे	हे रुची	हे रुचयः

'रुचि' शब्द के समान ही निम्न शब्दों के रूप चलते हैं—

स्तुति, मति, बुद्धि, गति, वेदि, श्रुति, स्मृति, कृति भृति (वेतन), भूमि आदि।

धेनु (दूध देनेवाली गाय)-स्त्रीलिङ्ग

धेनुः	धेनू	धेनवः
धेनुम्	,,	धेनूः
धेन्वा	धेनुभ्याम्	धेनुभिः
धेन्वै-धेनवे	,,	धेनुभ्यः
धेन्वाः-धेनोः	,,	,,
,, ,,	धेन्वोः	धेनूनाम्
धेन्वाम्-धेनौ	,,	धेनुषु
हे धेनो	हे धेनू	हे धेनवः

'धेनु' के समान निम्न शब्दों के रूप चलते हैं—

रज्जु (रस्सी), हनु (ठोड़ी), तनु (शरीर), रेणु (बारीक धूली) आदि।

दशम पाठ

अजन्त शब्द (३)

विद्या (आप्प्रत्ययान्त) स्त्रीलिङ्ग

विद्या शब्द के रूपों के ज्ञान के लिए निम्न नियमों को ध्यान में रखना चाहिये—

६७. नियम—आप्प्रत्ययान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों से परे 'सु' का लोप हो जाता है।[1] यथा—विद्या सु=विद्या स्=विद्या।

६८. नियम—औ औट् (प्र० द्वि० द्विवचन) के स्थान पर 'ई' आदेश हो जाता है।[2] यथा—विद्या औ=विद्या ई=विद्ये (गुण सन्धि से एकार)।

६९. नियम—टा और ओस् परे रहने पर अन्त्य आ को 'ए' हो जाता है।[3] यथा—विद्या टा=विद्या आ=विद्ये आ=विद्यय् आ=विद्यया (अयादि सन्धि से अय्), विद्ययोः।

७०. नियम—ङे के स्थान में 'यै' आदेश हो जाता है।[4] यथा—विद्या ङे=विद्या यै=विद्यायै।

७१. नियम—ङसि ङस् (अस्) को यास् आदेश हो जाता है।[5] यथा—विद्या अस्=विद्या यास्=विद्यायाः।

---

१. हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात् सुतिस्यपृक्तं हल्। अष्टा० ६।१।६८॥

२. औङ आपः। अष्टा० ७।१।१८॥

३. आङि चापः। अष्टा० ७।३।१०५॥

४. याडापः (अष्टा० ७।३।११३) से 'ए' को याट् आगम-या ए=यै।

५. याडापः (अष्टा० ७।३।११३) से अस् को याट् आगम-या अस्=यास्।

७२. **नियम**—ङि को याम् आदेश हो जाता है।[1] यथा—विद्या ङि=विद्या याम्=विद्यायाम्।

७३. **नियम**—सम्बोधन के एकवचन (सम्बुद्धि) में आ को ए आदेश और स् का लोप हो जाता है।[2] यथा—विद्या स्=विद्ये स्=विद्ये।

उक्त नियमों के अनुसार 'विद्या' शब्द के रूप चलाइये—

विद्या	विद्ये	विद्याः
विद्याम्	"	"
विद्यया	विद्याभ्याम्	विद्याभिः
विद्यायै	"	विद्याभ्यः
विद्यायाः	"	"
"	विद्ययोः	विद्यानाम्
विद्यायाम्	"	विद्यासु
हे विद्ये	हे विद्ये	हे विद्याः

'विद्या' शब्द के समान ही निम्न शब्दों के रूप चलते हैं—

कृपा, गङ्गा, बालिका, अजा, चटका, प्रजा, जाया, छाया, सुधा आदि।

देव (पुंल्लिङ्ग)

'देव' शब्द के रूपों के परिज्ञान के लिए निम्न नियमों को ध्यान में रखना चाहिये—

७४. **नियम**—औ औट् परे रहने पर शब्द के अन्त्य अ के साथ

१. याडापः (अष्टा० ७।३।११३) से याट् आगम, और ङेराम्नद्याम्नीभ्यः (अष्टा० ७।३।११६) से ङि को आम् आदेश। या आम्=याम्।

२. सम्बुद्धौ च (अष्टा० ७।३।१०६) से एकारादेश; एङ्ह्रस्वात् सम्बुद्धेः (अष्टा० ६।१।६७) से 'स्' का लोप।

प्रत्यय के ओ को वृद्धि सन्धि से 'औ' आदेश हो जाता है।[1] यथा—देव औ= देवौ।

७५. **नियम**—जस् शस् (=अस्) परे रहने पर शब्द के अन्त्य अ और प्रत्यय के अ को सवर्णदीर्घ हो जाता है।[2] यथा - देव जस्=देव अस्=देवास्=देवाः। देव शस्=देवान् (शस् के स् को न् पूर्व नियम ५८ से)।

७६. **नियम**—अकारान्त शब्द से परे टा ङे ङसि ङस् प्रत्यय के स्थान में क्रमशः इन य आत् स्य आदेश हो जाते हैं।[3] यथा—देव टा= देव आ= देव इन=देवेन (गुणसन्धि से एकार)। देव ङे=देव ए=देव य=देवाय (देखो नियम ७७)। देव ङसि=देव अस्=देव आत्=देवात् (सवर्णदीर्घ)। देव ङस्=देव अस्=देव स्य =देवस्य।

७७. **नियम**—ङे के स्थान पर हुए 'य' आदेश, और 'भ्याम्' से पूर्व अ को दीर्घ हो जाता है।[4] यथा—देव य=देवाय; देव भ्याम्= देवाभ्याम्।

७८. **नियम**—अकारान्त शब्द से परे 'भिस्' को 'ऐस्' आदेश हो जाता है।[5] यथा—देव भिस्=देव ऐस्=देवैस् (वृद्धिसन्धि से ऐकार)=देवैः।

७९. **नियम**—अन्त्य अकार को भ्यस् और सु परे रहने पर 'ए' आदेश हो जाता है।[6] यथा—देव भ्यस्=देवेभ्यः; देवेषु।

८०. **नियम**—अकारान्त शब्द से ओस् परे रहने पर अन्त्य अ

---

१. 'नादिचि' (अष्टा० ६।१।१००) से पूर्वसवर्ण दीर्घ का निषेध होनेपर 'वृद्धिरेचि' (अष्टा० ६।१।८८) से वृद्धि।

२. प्रथमयोः पूर्वसवर्णः। अष्टा० ६।१।९८॥

३. टाङसिङसामिनात्स्याः; ङेर्यः। अष्टा० ७।१।१२,१३॥

४. सुपि च। अष्टा० ७।३।१०२॥ ५. अतो भिस ऐस्। अष्टा० ७।१।९॥ ६. बहुवचने झल्येत्। अष्टा० ७।३।१०३॥

को 'ए' आदेश हो जाता है।[1] यथा—देव ओस्=देवे ओस्=देवयोस् (अयादि सन्धि)=देवयोः।

८१. नियम—सम्बुद्धि के स् का लोप हो जाता है।[2] यथा—हे देव स्=हे देव।

अब इन नियमों के अनुसार 'देव' शब्द के रूप चलाइयें—

देवः	देवौ	देवाः
देवम्	,,	देवान्
देवेन	देवाभ्याम्	देवैः
देवाय	,,	देवेभ्यः
देवात्	,,	,,
देवस्य	देवयोः	देवानाम्
देवे	,,	देवेषु
हे देव	हे देवौ	हे देवाः

'देव' शब्द के समान ही निम्न शब्दों के रूप चलते हैं—

शिव, ईश्वर, वत्स, बालक, पाठक, लेखक, ग्रन्थ, न्याय, राम, पुरुष आदि।

जिन शब्दों में र ष है, उन में तृतीया एकवचन और षष्ठी बहुवचन में न को ण हो जाता है। यथा—रामेण; रामाणाम्।

धन (नपुंसकलिङ्ग)

नपुंसकलिङ्ग अकारान्त 'धन' शब्द के रूप केवल पहली दो विभक्तियों में भिन्न होते हैं।नपुंसकलिङ्ग की विभक्तियों का रूप पहले बता चुके हैं। यथा—

---

१. ओसि च। अष्टा० ७।३।१०४॥

२. एङ्ह्रस्वात् सम्बुद्धेः। अष्टा० ६।१।६७॥

स्	ई	इ
अम्	ई	इ

८२. नियम—अकारान्त नपुंसकलिङ्ग से परे सु को अम् हो जाता है, और अम् के अ का पूर्ववत् लोप हो जाता है।[1] यथा—धन स्=धन अम्=धनम्।

द्विवचन में पूर्व अ और ई को गुण सन्धि से 'ए' हो जाता है। यथा—धन+ई=धने।

बहुवचन में नुम् (न) का आगम, और न् से पूर्व को दीर्घ हो जाता है। यथा—धन+इ=धन न् इ=धनानि।

धनम्	धने	धनानि
धनम्	धने	धनानि

आगे सब रूप 'देव' के समान चलेंगे।

'धन' शब्द के समान ही निम्न शब्दों के रूप चलते हैं—

वन, जल, गृह, धर्म, वस्त्र, शस्त्र, अस्त्र आदि।

विशेष—जिन शब्दों में र का योग है, उन में न को ण हो जाता है।-यथा धर्माणि, धर्मेण; वस्त्राणि, वस्त्रेण आदि।

---

१. अतोऽम्। अष्टा० ७।१।२४॥

एकादश पाठ

शेष अजन्त और संख्यावाची शब्द

ऋकारान्त शब्द

पितृ (पिता) पुँल्लिङ्ग

'पितृ' शब्द के रूपों के लिए निम्न नियमों को ध्यान में रखना चाहिये—

८३. **नियम**—सु परे रहने पर ऋकारान्त शब्दों के ऋ को अन् हो जाता है,सम्बुद्धि में नहीं होता[1]। यथा—पितृ स्=पितन् स्=पितन् =पितान्=पिता (सखन्=सखा के समान कार्य)।

८४. **नियम**—सर्वनामस्थान (सु औ जस् अम् औट्) और ङि विभक्तियों के परे अन्त्य ऋ को 'अर्' हो जाता है।[2] यथा—पितृ औ =पितर् औ=पितरौ; पितरि। सम्बुद्धि में गुण हो जाता है—हे पितः।

पितन् के लिये देखिये नियम ५८।

टा, ङस् ओस् परे रहने पर ऋ को यण्सन्धि से र् हो जाता है। यथा—पितृ आ=पित्रा, पित्रे, पित्रोः।

१. ऋदुशनस्पुरुदंसोऽनेहसां च। अष्टा० ७।१।९४॥

२. ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः। अष्टा० ७।३।११०॥

८५. **नियम**—ङसि ङस् परे रहने पर ऋ को 'उ', और अस् के 'अ' का लोप होता है।[1] यथा—पितृ ङसि=पितृ अस्=पितु अस्= पितु स्=पितुः ।

इन नियमों को ध्यान में रखकर 'पितृ' शब्द के रूप चलाइये—

पिता	पितरौ	पितरः
पितरम्	,,	पितॄन्
पित्रा	पितृभ्याम्	पितृभिः
पित्रे	,,	पितृभ्यः
पितुः	,,	,,
,,	पित्रोः	पितॄणाम्
पितरि	पित्रोः	पितृषु
हे पितः	हे पितरौ	हे पितरः

'पितृ' के समान ही निम्न शब्दों के रूप चलते हैं—

भ्रातृ, जामातृ (जवांई) ।

नृ (नर)

'नृ' शब्द के भी रूप 'पितृ' के समान ही चलते हैं, केवल आम् (षष्ठी बहु०) में ऋ को दीर्घ विकल्प से होता है।[2] यथा—नॄणाम्-नृणाम् ।

अन्यत्र—ना नरौ नरः, नरम् नरौ नॄन्, ना नृभ्याम् नृभिः, नरे नृभ्याम् नृभ्यः, नुः नृभ्याम् नृभ्यः, नुः नरोः नृणाम्-नॄणाम्, नरि नरोः नृषु, हे नः हे नरौ हे नरः ।

---

१. ऋत उत् । अष्टा० ६।१।१०७॥

२. नृ च । अष्टा० ६।४।६॥

मातृ (माता) स्त्रीलिङ्ग

'मातृ' शब्द के स्त्रीलिङ्ग होने से शस् के 'स्' को न् आदेश नहीं होता; स् को विसर्ग हो जाते हैं (किन्तु दीर्घ होता है) मातॄः।

'मातृ' के समान ही दुहितृ, ननान्दृ, यातृ (भाइयों की स्त्री) आदि।

कर्तृ (करनेवाला) पुँल्लिङ्ग

'कर्तृ'[1] आदि ऋकारान्त शब्दों के रूप सर्वनामस्थान विभक्तियों से अन्यत्र 'पितृ' के समान चलते हैं। सम्बुद्धि को छोड़ कर अन्य सर्वनामस्थान विभक्तियों में पूर्व नियम ८४ से अर् होने पर र् की उपधा (पूर्व वर्ण अ को) को दीर्घ हो जाता है। यथा—कर्तृ औ=कर्तर् औ=कर्तार्+औ=कर्तारौ।

'कर्तृ' शब्द के रूप इस प्रकार चलते हैं—

कर्ता	कर्तारौ	कर्तारः
कर्तारम्	"	कर्तॄन्
कर्त्रा	कर्तृभ्याम्	कर्तृभिः
कर्त्रे	"	कर्तृभ्यः
कर्तुः	"	"
"	कर्त्रोः	कर्तॄणाम्
कर्तरि	"	कर्तृषु
हे कर्तः	हे कर्तारौ	हे कर्तारः

'कर्तृ' शब्द के समान ही निम्न शब्दों के रूप चलते हैं—

हर्तृ, भर्तृ, नेतृ, होतृ, पोतृ, नप्तृ, प्रशास्तृ आदि।

---

१. अप्तृन्तृच्स्वसृनप्तृनेष्टृत्वष्टृक्षत्तृहोतृपोतृप्रशास्तॄणाम्। अष्टा० ६।४।११॥

स्वसृ (बहन) स्त्रीलिङ्ग

'स्वसृ' शब्द के रूप सर्वनामस्थान प्रत्ययों में 'कर्तृ' के समान चलते है। परन्तु स्त्रीलिङ्ग होने से शस् के स् को न् नहीं होता। यथा—

स्वसा	स्वसारौ	स्वसारः
स्वसारम्	"	स्वसॄः

आगे 'पितृ' के समान सब रूप चलेंगे।

संख्यावाची शब्द

एक शब्द की सर्वनाम संज्ञा होती है, अतः उस के रूप आगे बतायेंगे। यहां द्वि से लेकर दश तक के रूप बताये जाते हैं—

द्वि शब्द त्रिलिङ्ग

द्वि शब्द दो का वाचक है। अतः उसके केवल द्विवचन में ही रूप चलते हैं।

८६. नियम—'द्वि' शब्द को सभी विभक्तियों में इ को 'अ' होकर 'द्व' रूप बन जन जाता है।[1] इसलिये पुंल्लिङ्ग में इसके रूप 'देव' के समान चलते हैं।

८७. नियम—स्त्रीलिङ्ग में 'द्व' रूप हो जाने पर 'आप्' प्रत्यय होकर 'द्वा' रूप बन जाता है। अतः इसके रूप 'विद्या' शब्द के समान चलते हैं।

८८. नियम—नपुंसकलिङ्ग में 'द्व' के रूप 'धन' के समान चलते हैं। यथा—

---

१. त्यदादीनामः। अष्टा० ७।२।१०२॥

पुंल्लिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग	नपुंसकलिङ्ग
द्वौ	द्वे	द्वे
द्वौ	द्वे	द्वे
हे द्वौ	हे द्वे	हे द्वे

आगे सर्वत्र समान रूप चलते हैं—द्वाभ्याम्, द्वाभ्याम्, द्वाभ्याम्, द्वयोः, द्वयोः।

त्रि शब्द त्रिलिङ्ग

'त्रि' शब्द बहुवचनान्त है। अतः इस के रूप बहुवचन में ही चलते हैं।

पुँल्लिङ्ग में रूप

त्रि के इकारान्त होने से जस् में अग्नि के समान 'इ' को 'ए' गुण हो जाता है।[1] त्रि जस्=त्रि अस्=त्रे अस्=त्रयः।

८८. नियम—आम् विभक्ति परे त्रि को 'त्रय' अकारान्त आदेश होता है।[2] त्रि आम्=त्रय आम्=त्रय न् आम्=त्रया न् आम्=त्रयाणाम्।

'त्रि' शब्द के रूप इस प्रकार चलते हैं—

त्रयः, त्रीन्, त्रिभिः, त्रिभ्यः, त्रिभ्यः, त्रयाणाम्, त्रिषु, हे त्रयः।

स्त्रीलिङ्ग में रूप

९०. नियम—स्त्रीलिङ्ग में त्रि को 'तिसृ' आदेश हो जाता है।[3]

९१. नियम—जस् शस् परे रहने पर तिसृ के ऋ को र् आदेश हो जाता है।[4] यथा—त्रि जस्=तिसृ=अस्=तिस्र् अस्=तिस्रः। त्रि शस्=पूर्ववत् तिस्रः।

---

१. जसि च। अष्टा० ७।३।१०९॥

२. त्रेस्त्रयः। अष्टा० ७।१।५३॥

३. त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ। अष्टा० ७।२।९९॥

४. अचि र ऋतः। अष्टा० ७।२।१००॥

९२. **नियम**—आम् परे रहने पर तिसृ को दीर्घ नहीं होता।[1] यथा—तिसृ आम्=तिसृ न आम्=तिसृणाम्।

'तिसृ' शब्द के रूप इस प्रकार चलते हैं—

तिस्रः, तिस्रः, तिसृभिः, तिसृभ्यः, तिसृभ्यः, तिसृणाम्, तिसृषु, हे तिस्रः।

नपुंसकलिंग में रूप

नपुंसकलिङ्ग में 'त्रि' शब्द के रूप 'वारि' के समान चलते हैं। यथा—त्रीणि त्रीणि त्रिभिः आदि।

पुंल्लिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग	नपुंसकलिङ्ग
त्रयः	तिस्रः	त्रीणि
त्रीन्	"	"
त्रिभिः	तिसृभिः	त्रिभिः
त्रिभ्यः	तिसृभ्यः	त्रिभ्यः
"	"	"
त्रयाणाम्	तिसृणाम्	त्रयाणाम
त्रिषु	तिसृषु	त्रिषु
हे त्रयः	हे तिस्रः	हे त्रयः

चतुर् शब्द त्रिलिंग

पुंल्लिङ्ग 'चतुर्' शब्द में निम्न नियम विशेषः लगता है—

९३. **नियम**—जस् के परे चतुर् में रेफ से पूर्व 'आ' का आगम होता है।[2] यथा—चतुर् जस्=चतुर् अस्=चतु आ र् अस् (यण् सन्धि से व् होकर)=चत्वारः।

---

१. न तिसृचतसृ। अष्टा० ६।४।४॥

२. चतुरनडुहोराम् उदात्तः। अष्टा० ७।१।९८॥

९४. नियम — आम् परे चतुर् को नुट् का आगम होता है[1] चतुर्णाम्।

शेष रूप पूर्ववत् होंगे।

स्त्रीलिङ्ग में चतुर् को चतसृ आदेश[2] होकर तिसृ के समान रूप चलते हैं।

नपुंसकलिङ्ग में जस् शस् को सर्वनामस्थानसंज्ञक शि आदेश होकर रेफ से पूर्व 'आ' का आगम होता है। चतुर् अम् चत्वारि[3]

पुंलिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग	नपुंसकलिङ्ग
चत्वारः	चतस्रः	चत्वारि
चतुरः	.	चत्वारि
चतुर्भिः	चतसृभिः	चतुर्भिः
चतुर्भ्यः	चतसृभ्यः	चतुर्भ्यः
,,	,,	,,
चतुर्णाम्	चतसृणाम्	चतुर्णाम्
चतुर्षु	चतसृषु	चतुर्षु
हे चत्वारः	हे चतस्रः	हे चत्वारि

पञ्चन् सप्तन् नवन् दशन्

इन शब्दों के रूप तीनों लिङ्गों में एक जैसे होते हैं। इन के रूपों के लिए निम्न नियम ध्यान में रखने चाहियें—

९५. नियम — नकारान्त और षकारान्त संख्यावाची शब्दों से परे

---

१ षट्चतुर्भ्यश्च। अष्टा० ७।१।५५।

२ त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ। अचि र ऋतः। अष्टा० ७।२।१००,१०१।

३ चतुरनडुहोरामुदात्तः। अष्टा० ७।१।९८।

जस् शस् का लोप हो जाता है।[1]

९६. **नियम**—सभी विभक्तियों में 'न्' का लोप हो जाता।[2]

९७. **नियम**—आम् परे रहने पर न् (नुट्) का आगम होता है, और पूर्व को दीर्घ हो जाता है।[3] यथा—पञ्चन् आम्=पञ्चन् न् आम्=पञ्च न् आम्=पञ्चानाम्।

पञ्च	सप्त	नव	दश
पञ्च	सप्त	नव	दश
पञ्चभिः	सप्तभिः	नवभिः	दशभिः
पञ्चभ्यः	सप्तभ्यः	नवभ्यः	दशभ्यः
"	"	"	"
पञ्चानाम्	सप्तानाम्	नवानाम्	दशानाम्
पञ्चसु	सप्तसु	नवसु	दशसु
हे पञ्च	हे सप्त	हे नव	हे दश

षष्

'षष्' शब्द के रूप भी तीनों लिङ्गों में एक समान चलते हैं। इस के रूपों में निम्न नियम जानने चाहियें—

(१) जस् शस् का लोप होता है।

(२) सभी विभक्तियों में ष् को ड् हो जाता है।

(३) जस् शस् में ड् को ट् विकल्प से होता है।

(४) आम् परे रहने पर नुट् (न्) का आगम, ष को ड्, ड् को

---

१. नकारान्त षकारान्त संख्यावाची शब्दों की षट्-संज्ञा होती है—ष्णान्ताः षट् (अष्टा० १।१।२), उसके बाद षड्भ्यो लुक् (अष्टा० ७।१।२२) से जस् शस् का लुक् (लोप) होता है।

२. न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य। अष्टा० ८।२।७।

३. षट्चतुर्भ्यश्च (अष्टा० ७।१।५५) से नुट्; नामि (अष्टा० ६।४।३) से दीर्घ।

ण्, और नुट् के न को ण् हो जाता है। यथा—

षट्-षड्, षट्-षड्, षड्भिः, षड्भ्यः, षड्भ्यः, षण्णाम्, षट्सु, हे षट्, षड्।

अष्टन्

'अष्टन्'शब्द के रूप भी तीनों लिङ्गों में एक जैसे चलते हैं। इस के रूपों के लिए निम्न नियमों को ध्यान में रखना चाहिये—

९८. नियम—सभी विभक्तियों में अष्टन् के न् को 'आ' विकल्प से होता है।[1] इस प्रकार अष्ट आ=अष्टा और अष्टन् दो रूप बन जाते हैं,और दोनों के अलग-अलग रूप चलते हैं।

९९. नियम—अष्टा से परे जस् शस् को 'औ' आदेश होता है[2]। अष्टा जस्=अष्टा औ=अष्टौ= (वृद्धि सन्धि से औ)।

१००. नियम—अष्टा को भी आम् परे नुट् का आगम होता है। अष्टा आम्=अष्टानाम्।

'अष्टन्' नकारान्त के रूप पञ्चन् के समान ही चलते हैं—

अष्टौ	अष्ट
अष्टौ	अष्ट
अष्टाभिः	अष्टभिः
अष्टाभ्यः	अष्टभ्यः
अष्टाभ्यः	अष्टभ्यः
अष्टानाम्	अष्टानाम्
अष्टासु	अष्टसु
हे अष्टौ	हे अष्ट

---

१. अष्टन आ विभक्तौ। अष्टा० ७।२।८४।।

२. अष्टाभ्य औश्। अष्टा० ७।१।२१।।

द्वादश पाठ

सर्वनाम शब्द

अब हम कतिपय सर्वनाम शब्दों के रूप बताते हैं। सर्वनाम शब्दों के रूपों के लिए निम्न नियम ध्यान में रखने चाहियें—

भवत् (आप) पुँल्लिङ्ग

१०१. **नियम**—भवत् शब्द के त् से पूर्व नुम् (न्) का आगम होता है, सर्वनामस्थान विभक्ति परे रहने पर।[1] भवत् औ=भवन् त् औ=भवन्तौ।

१०२. **नियम**—सु परे रहने पर न् का आगम (भवन् त् स्) होकर, स् त् का लोप होकर भवन् रूप बनने पर 'आत्मन्' के समान दीर्घ हो जाता है। सम्बोधन के एकवचन में दीर्घ नहीं होता।

आगे की विभक्तियों के सभी रूप 'सरट्' के समान चलेंगे—

भवान्	भवन्तौ	भवन्तः
भवन्तम्	भवन्तौ	भवतः
भवता	भवद्भ्याम्	भवद्भिः
भवते	,,	भवद्भ्यः
भवतः	,,	,,
,,	भवतोः	भवताम्
भवति	,,	भवत्सु
हे भवन्	हे भवन्तौ	हे भवन्तः

---

१. उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः। अष्टा० ७।१।७०॥

भवती (स्त्रीलिङ्ग)

'भवत्' शब्द का स्त्रीलिङ्ग में 'भवती' रूप होता है। अतः उसके रूप 'नदी' के समान चलते हैं। यथा—भवती भवत्यौ भवत्यः आदि।

सर्व (सब) पुंल्लिङ्ग

पुंल्लिङ्ग अकारान्त सर्वनाम शब्दों के रूप 'देव' के समान चलते हैं। जहां भेद होता है, उस के निम्न नियम हैं—

१०३. नियम—अकारान्त शब्द से परे जस् को शी (ई) आदेश होता है।[1] यथा—सर्व जस्=सर्व अस्=सर्व ई=सर्वे (गुण सन्धि)।

१०४. नियम—अकारान्त सर्वनाम से परे ङे ङसि ङि में क्रमशः स्मै स्मात् स्मिन् आदेश होते हैं[2]। यथा—सर्वस्मै, सर्वस्मात्, सर्वस्मिन्।

१०५. नियम—अकारान्त सर्वनाम से परे आम् को सुट् (स्) का आगम होता है।[3] पूर्व अ को ए और स् को ष् हो जाता है। यथा-सर्वेषाम्।

इन नियमों के अनुसार 'सर्व' के रूप चलाइये—

सर्वः	सर्वौ	सर्वे
सर्वम्	"	सर्वान्
सर्वेण	सर्वाभ्याम्	सर्वैः
सर्वस्मै	"	सर्वेभ्यः
सर्वस्मात्	"	"
सर्वस्य	सर्वयोः	सर्वेषाम्
सर्वस्मिन्	"	सर्वेषु
हे सर्व	हे सर्वौ	हे सर्वे

१. जसः शी। अष्टा० ७।१।१७।

२. सर्वनाम्नः स्मै; ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ। अष्टा० ७।१।१४,१५।

३. आमि सर्वनाम्नः सुट्। अष्टा० ७।१।५२।

सर्वा(स्त्रीलिङ्ग)

स्त्रीलिङ्ग में सर्व शब्द को आप् प्रत्यय होकर 'सर्वा' रूप बनता है। उस के रूप 'विद्या' के समान चलते हैं। कुछ रूपों में विशेषता होती है, उन के नियम इस प्रकार हैं—

१०६. नियम—ङे, ङसि, ङस्, ङि के स्थान में क्रमशः स्यै, स्याः स्याः, स्याम् आदेश हो जाते हैं, और पूर्व आकार को ह्रस्व हो जाता है।[1] यथा सर्वा ङे=सर्वा स्यै=सर्वस्यै।

आम् (ष० बहु०) को नियम १०५ से सुट् (स्) का आगम होता है। यथा—सर्वा आम्=सर्वासाम्।

अब 'सर्वा' के रूप चलाइये—

सर्वा	सर्वे	सर्वाः
सर्वाम्	"	"
सर्वया	सर्वाभ्याम्	सर्वाभिः
सर्वस्यै	"	सर्वाभ्यः
सर्वस्याः	"	"
सर्वस्याः	सर्वयोः	सर्वासाम्
सर्वस्याम्	"	सर्वासु
हे सर्वे	हे सर्वे	हे सर्वाः

सर्व (नपुंसकलिङ्ग)

'सर्व' शब्द के नपुंसकलिङ्ग में प्रथम दो विभक्तियों के रूप 'धन' के समान, और आगे पुंलिङ्ग 'सर्व' के समान चलते हैं—

सर्वम्	सर्वे	सर्वाणि
"	"	"
सर्वेण	सर्वाभ्याम्	सर्वैः

१. सर्वनाम्नः स्याड्ढ्रस्वश्च (अष्टा० ७।३।११४) से प्रत्यय को स्या आगम। स्या ए=स्यै; स्या अस्=स्याः; स्या आम्=स्याम्।

आगे पुंल्लिङ्ग के समान रूप चलते हैं।

'सर्व' शब्द के समान ही तीनों लिङ्गों में निम्न शब्दों के रूप चलते हैं—

विश्व, अन्य, अन्यतर, त्व, सम, सिम आदि।

यद् (जो) शब्द

'यद्' सर्वनाम के रूप जानने के लिए निम्न नियमों को ध्यान में रखना चाहिये—

१०७. **नियम**—सभी विभक्तियों के परे रहने पर अन्त्य द् को 'अ' हो जाता है।[1] यथा—यद् सु=यद् स्=य अ स्=य स् (पर-रूप सन्धि से दोनों अ अ के स्थान पर एक अ होता है)=यः। शेष सभी रूप 'सर्व' के समान चलते हैं।

स्त्रीलिङ्ग में विभक्ति परे द् को अ आदेश हो जाने पर स्त्री प्रत्यय 'आ' होकर 'या' रूप बन जाता है। इस के सभी रूप 'सर्वा' के समान चलते हैं।

१०८. **नियम**—नपुंसक लिङ्ग में यद् से परे सु अम् का लोप हो जाने पर विभक्ति परे न रहने से नियम १०७ से अकार नहीं होता। अतः रूप बनता है—यद् सु=यद्-यत्। यद् अम्=यद्-यत्।

यद् (पुँल्लिङ्ग)

यः	यौ	ये
यम्	,,	यान्

१. त्यदादीनामः। अष्टा० ७।२।१०२॥

२. स्वमोर्नपुंसकात्। अष्टा० ७।१।२३॥

येन	याभ्याम्	यैः
यस्मै	,,	येभ्यः
यस्मात्	,,	,,
यस्य	ययोः	येषाम्
यस्मिन्	,,	येषु
हे यः	हे यौ	हे ये

यद् (स्त्रीलिङ्ग)

या	ये	याः
याम्	ये	याः
यया	याभ्याम्	याभिः
यस्यै	,,	याभ्यः
यस्याः	,,	,,
,,	ययोः	यासाम्
यस्याम्	,,	यासु
हे ये	हे ये	हे याः

यद् (नपुंसकलिङ्ग)

यत्-यद्	ये	यानि
यत्-यद्	ये	यानि

शेष विभक्तियों में पुंलिङ्ग के समान रूप चलते हैं।

'यद्' के समान ही तद् त्यद् एतद् के रूप चलते हैं। परन्तु तद् त्यद् एतद् के सु परे रहने पर अन्त्य द् को 'अ' होकर त त्य एत रूप बन जाने पर इन में वर्तमान त् को स् आदेश हो जाता है।[1] यथा—तद् स्=त अ स्=त स्=स स्=सः। त्यद् स्=त्य स्=स्यः। एतद्

१. तदोः सः सावनन्त्ययोः। अष्टा० ७।२।१०६॥

स्=एत स्=एस स्=एष् स्=एषः।

इसी प्रकार स्त्रीलिङ्ग में सु परे रहने पर—

सा ते ताः। स्या त्ये स्याः। एषा एते एताः रूप बनते हैं।

नपुंसकलिङ्ग में सु का लोप हो जाने से त् को स् भी नहीं होता—

तत्-तद्	ते	तानि
" "	"	"
त्यत्-त्यद्	त्ये	त्यानि
" "	"	"
एतत्-एतद्	एते	एतानि
"	"	"

अगली विभक्तियों में पुंल्लिङ्ग के समान रूप चलते हैं।

किम् (कौन) शब्द

'किम्' शब्द के रूप जानने के लिए निम्न नियमों को ध्यान में रखना चाहिये—

१०९. नियम—'किम्' शब्द को विभक्ति परे रहने पर 'क' आदेश हो जाता है।[1]

पुंल्लिङ्ग में क, स्त्रीलिङ्ग में 'आप्' होकर 'का' रूप बनता है। नपुंसकलिङ्ग सु अम् का लोप होने से प्रथमा एकवचन में क आदेश नहीं होता, अन्यत्र होता है। इस के रूप इस प्रकार चलते हैं—

पुंल्लिङ्ग में—कः कौ के। सर्व के समान।

स्त्रीलिङ्ग में—का के काः। सर्वा के समान।

नपुंसकलिङ्ग में—किम के कानि। इत्यादि।

---

१. किमः कः। अष्टा० ७।२।१०३॥

सर्वनाम के विशेष शब्द

अब हम सर्वनाम के चार ऐसे शब्द लिखते हैं जिन के रूपों के बनाने में बहुत नियम लगते हैं। उन नियमों का ध्यान रखने की अपेक्षा रूप स्मरण कर लेना ही सरल है—

इदम् (यह) पुँल्लिङ्ग

अयम्	इमौ	इमे
इमम्	,,	इमान्
अनेन	आभ्याम्	एभिः
अस्मै	,,	एभ्यः
अस्मात्	,,	,,
अस्य	अनयोः	एषाम्
अस्मिन्	,,	एषु

इदम् (स्त्रीलिङ्ग)

इयम्	इमे	इमाः
इमाम्	,,	,,
अनया	आभ्याम्	आभिः
अस्यै	,,	आभ्यः
अस्याः	,,	,,
अस्याः	अनयोः	आसाम्
अस्याम्	,,	आसु

इदम् (नपुंसकलिङ्ग)

इम्	इमे	इमानि
इदम्	इमे	इमानि

आगे पुंल्लिङ्गवत्।

अदस् (पुँल्लिङ्ग)

असौ	अमू	अमी
अमुम्	,,	अमून्
अमुना	अमूभ्याम्	अमीभिः
अमुष्मै	,,	अमीभ्यः
अमुष्मात्	,,	,,
अमुष्य	अमुयोः	अमीषाम्
अमुष्मिन्	,,	अमीषु

अदस् (स्त्रीलिङ्ग)

'अदस्' शब्द के स्त्रीलिङ्ग में इस प्रकार रूप चलते हैं—

असौ	अमू	अमूः
अमुम्	,,	,,
अमुया	अमूभ्याम्	अमूभिः
अमुष्यै	,,	अमूभ्यः
अमुष्याः	,,	,,
,,	अमुयोः	अमूषाम्
अमुष्याम्	,,	अमूषु

अदस् (नपुंसकलिङ्ग)

नपुंसकलिङ्ग में 'अदस्' शब्द के प्रथमा द्वितीया विभक्ति में इस प्रकार रूप चलते है—

अदः	अमू	अमूनि
,,	,,	,,

आगे तृतीया आदि विभक्तियों में पुंल्लिङ्ग के समान ही रूप चलते हैं ।

अस्मद् (मैं) त्रिलिङ्ग

'अस्मद्' शब्द के तीनों लिङ्गों में एक समान रूप चलते हैं, जो इस प्रकार हैं—

अहम्	आवाम्	वयम्
माम्	,,	अस्मान्
मया	आवाभ्याम्	अस्माभिः
मह्यम्	,,	अस्मभ्यम्
मत्	,,	अस्मत्
मम	आवयोः	अस्माकम्
मयि	,,	अस्मासु

'अस्मद्' शब्द का यदि किसी पद से परे प्रयोग करना हो, तो द्वितीया चतुर्थी और षष्ठी विभक्ति में उसके निम्न रूप प्रायः प्रयुक्त होते हैं--

द्वितीया	मा	नौ	नः
चतुर्थी	मे	,,	,,
षष्ठी	,,	,,	,,

युष्मद् (तू) त्रिलिङ्ग

'युष्मद्' शब्द के भी तीनों लिङ्गों में एक-जैसे ही प्रयोग बनते हैं। यथा—

त्वम्	युवाम्	यूयम्
त्वाम्	,,	युष्मान्
त्वया	युवाभ्याम्	युष्माभिः
तुभ्यम्	,,	युष्मभ्यम्
त्वत्	,,	युष्मत्

तव	युवयोः	युष्माकम्
त्वयि	"	युष्मासु

'युष्मद्' शब्द का भी यदि पद से परे प्रयोग करना हो, तो द्वितीय चतुर्थी और षष्ठी विभक्ति में उसके निम्न रूप प्रायः प्रयुक्त होते हैं—

द्वितीया	त्वा	वाम्	वः
चतुर्थी	ते	"	"
षष्ठी	"	"	"

इति शब्द-रूपावली समाप्ता ॥



रामलाल कपूर ट्रस्ट द्वारा

[प्रकाशित वा प्रसारित कुछ प्रामाणिक ग्रन्थ]

१. यजुर्वेदभाष्य-विवरण—ऋषि दयानन्दकृत भाष्य पर पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु कृत विवरण। प्रथम भाग १५०.००, द्वितीय भाग ७५.००।

२. तैत्तिरीय-संहिता—मूलमात्र, मन्त्र सूची सहित। १००.००

३. तैत्तिरीयसंहिता-पदपाठः—५० वर्ष से दुर्लभ ग्रन्थ का पुनः प्रकाशन, बढ़िया सुन्दर जिल्द १५०.००।

४. अथर्ववेदभाष्य—श्री पं० विश्वनाथजी वेदोपाध्यायकृत। १-२ काण्ड ५०.००; ४-५ काण्ड ५०.००, ६ काण्ड ५०.००, ७-८ काण्ड ५०.००, ९-१० काण्ड ५०.००, ११-१३ काण्ड ५०.००, १४-१७ काण्ड ५०.००, १८-१९ काण्ड ५०.००, बीसवां काण्ड ५०.००।

५. ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका—पं० युधिष्ठिर मीमांसक द्वारा सम्पादित एवं शतशः टिप्पणियों से युक्त। सजिल्द ५०.००।

६. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका-परिशिष्ट—भूमिका पर किये गये आक्षेपों के ग्रन्थकार द्वारा दिये गए उत्तर। ५.००

७. भूमिका-भास्कर—स्वामी विद्यानन्द। दोनों भाग ३००.००

८. माध्यन्दिन(यजुर्वेद)पदपाठ—शुद्ध संस्करण। १००.००

९. गोपथब्राह्मण (मूल)—सम्पादक श्री डा० विजयपालजी विद्यावारिधि। सबसे अधिक शुद्ध और सुन्दर संस्करण। ८०.००

१०. वैदिक-सिद्धान्त-मीमांसा—पं० युधिष्ठिर मीमांसक लिखित वेद-वेदाङ्गादि विषयक निबन्धों का संग्रह। प्रथम भाग ७५.००, द्वितीय भाग १००.००।

११. कात्यायनीय ऋक्सर्वानुक्रमणी—(ऋग्वेदीया) षड्गुरुशिष्य विरचित संस्कृत टीका सहित। टीका का पूरा पाठ प्रथम बार छापा गया है। विस्तृत भूमिका और अनेक परिशिष्टों से युक्त। १५०.००

१२. ऋग्वेदानुक्रमणी—वेङ्कटमाधवकृत। इस ग्रन्थ में स्वर छन्द आदि आठ वैदिक विषयों पर गम्भीर विचार किया है। व्याख्याकार—डा० विजयपालजी विद्यावारिधि। ५०.००

१३. वैदिक-साहित्य-सौदामिनी—स्व० श्री पं० वागीश्वर वेदालङ्कार। काव्यप्रकाश, साहित्यदर्पण आदि के समान वैदिक साहित्य पर शास्त्रीय विवेचनात्मक ग्रन्थ। सजिल्द ७०.००

१४. ऋग्वेद की ऋक्संख्या—पं० युधिष्ठिर मीमांसक। ५.००

१५. वेद-श्रुति-आम्नाय-संज्ञा-मीमांसा—युधिष्ठिर मीमांसक ३.००

१६. वैदिक छन्दोमीमांसा—यु० मी०। नया संस्करण ५०.००

१७. वैदिक स्वर-मीमांसा—यु० मी०। ,, ,, ५०.००

१८. उरु-ज्योति—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल लिखित वेदविषयक स्वाध्याय योग्य निबन्धों का संग्रह। सुन्दर छपाई। पक्की जिल्द २५.००

१९. वैदिक-जीवन—श्री विश्वनाथजी विद्यामार्तण्ड द्वारा अथर्ववेद के आधार पर वैदिक जीवन के सम्बन्ध में लिखा गया अत्यन्त उपयोगी स्वाध्याय योग्य ग्रन्थ। अजिल्द ३०.००, सजिल्द ४०.००

२०. वैदिक गृहस्थाश्रम—पूर्व लेखक द्वारा अथर्ववेद के आधार पर लिखित महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ। सजिल्द ५०.००

२१. पुरुषार्थ-प्रकाश—लेखक—श्री स्वामी विश्वेश्वरानन्दजी और स्वा० नित्यानन्दजी महाराज। ब्रह्मचर्य और गृहस्थधर्म सम्बन्धी ५० वर्षों से अप्राप्त पुस्तक। ४०.००

२२. यजुर्वेद का स्वाध्याय तथा पशुयज्ञ समीक्षा—लेखक—पं० विश्वनाथ जी वेदोपाध्याय। २०.००

२३. शतपथब्राह्मणस्थ अग्निचयन-समीक्षा—लेखक पं० विश्वनाथ जी वेदोपाध्याय। सजिल्द ६०.००

२४. ऋग्वेद-परिचय—श्री पं० विश्वनाथ जी विद्यामार्तण्ड। ऋग्वेद का परिचयात्मक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ। अजिल्द २०.००; सजिल्द २५.००।

२५. वैदिक-पीयूष-धारा—लेखक—श्री देवेन्द्रकुमार कपूर। चुने हुए ५० मन्त्रों की प्रतिमन्त्र पदार्थ पूर्वक विस्तृत व्याख्या, अन्त में भावपूर्ण गीतों से युक्त। उत्तम जिल्द १५.००; साधारण १०.००।

२६. क्या वेद में आर्यों और आदिवासियों के युद्धों का वर्णन है? लेखक—श्री वैद्य रामगोपाल जी शास्त्री। १२.००

२७. वेदों की प्रामाणिकता—डा० श्रीनिवास शास्त्री। ४.००

२८. Anthology of Vedic Hymns—स्वा० भूमानन्द सरस्वती। १००.००

२९. Success Motivating Vedic Lores—श्री देवेन्द्र कुमार कपूर। ५०.००

३०. बौधायन-श्रौत-सूत्रम्—(दर्शपूर्णमास) भवस्वामी और सायणाचार्य की व्याख्या सहित। मूल्य ६०.००।

३१. बौधायन-श्रौत-सूत्रम्—(आधान-प्रकरण)—सुबोधिनीवृत्ति और आधानप्रक्रियासहित (संस्कृत)। ६०.००

३२. दर्शपूर्णमास-पद्धति—पं० भीमसेन कृत, भाषार्थ सहित ३०.००

३३. कात्यायन-गृह्यसूत्रम्—(मूलमात्र) अनेक हस्तलेखों के आधार पर हमने इसे प्रथम बार छापा है। २५.००

३४. श्रौतपदार्थ-निर्वचनम्—(संस्कृत) अग्न्याधान से अग्निष्टोम पर्यन्त आध्वर्यव पदार्थों का विवरणात्मक ग्रन्थ। सजिल्द ५०.००

३५. श्रौत-यज्ञ-मीमांसा—(संस्कृत तथा हिन्दी)। लेखक—पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक। इसमें श्रौतयज्ञों की उत्पत्ति, प्रयोजन, उनमें परिवर्तन तथा पशुयज्ञों पर विस्तार से विवेचना की है ४०.००

३६. संस्कार-विधि—स्वामी दयानन्द सरस्वती। अजिल्द १२.००, सजिल्द १६.००।

पुस्तक प्राप्ति-स्थान—

रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़ (सोनीपत-हरियाणा) १३१०२१

रामलाल कपूर एण्ड संस २५९६, नई सड़क, देहली

नवीन प्रकाशन

१. वाल्मीकि-रामायण—पं० अखिलानन्द जी कृत हिन्दी अनुवाद सहित बालकाण्ड ५०.००, सुन्दर काण्ड ३०.००, युद्धकाण्ड ४०.०० ।

२. सिद्धान्त-शतकम्— (संस्कृत-हिन्दी) लेखक—श्री जयदत्त शास्त्री १५.००

३. हिन्दुओं का भविष्य—लेखक—डा० हरिश्चन्द्र २.५०

४. पाश्चात्य भारतविद्—उद्देश्यों का अध्ययन—लेखक—पं० भगवद्दत्त अनुवादक—ब्र० देवदत्त आर्य ५.००

५. मनुष्यमात्र का परममित्र—स्वायंभुव मनु—पं० भगवद्दत्त ५.००

६. संस्कृत पठन-पाठन की अनुभूत सरलतम विधि—पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु । प्रथम भाग ३०.००, द्वितीय भाग ४५.०० ।

७. वर्णोच्चारणशिक्षा—ऋषि दयानन्द कृत हिन्दी व्याख्या । उत्तम कागज ३.००

८. वामनीय-लिङ्गानुशासनम्—(स्वोपज्ञवृत्ति सहित) १५.००

'वेदवाणी' (मासिक) पत्रिका

४८ वर्षों से विना नागा नियत समय पर प्रकाशित होनेवाली वेदादि विशिष्ट विषयों की एक मात्र प्रामाणिक पत्रिका। प्रतिवर्ष किसी महत्त्वपूर्ण विषय पर एक बृहद विशेषाङ्क दिया जाता है। इसका चन्दा ४०.०० रुपये वार्षिक, ७५.०० द्विवार्षिक, १००.०० त्रिवार्षिक, ४००.०० रुपये आजीवन सदस्यता शुल्क भारत में। विदेशों के लिए क्रमश: १००/, ३००/, ४००/ रुपये और आजीवन सदस्यता शुल्क १५० अमेरिकन डालर ।

ग्रन्थ प्राप्ति-स्थान—

रामलाल कपूर ट्रस्ट बहालगढ़, जिला सोनीपत (हरियाणा)
रामलाल कपूर एण्ड सन्स, २५९६ नई सड़क, दिल्ली—६